तुलसी
कृत
कवितावली
का
अनुशीलन

तुलसीकृत कवितावली

का

अनुशीलन

डॉ० भानुकुमार जैन
एम ए पी-एच डी
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग
अमरसिंह कालिज लखावटी (बुलन्दशहर)
(मेरठ विश्वविद्यालय)

पुस्तक प्रचार, गांधी नगर, दिल्ली-३१

समर्पण

वात्सल्यमयी जननी को

जो

इस लोक मे

अब नही हैं।

समर्पण

वात्सल्यमयी जननी को

जो

इस लोक मे

अब नही है।

'कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ।।
कबित विबेक एक नहिं मोरे । सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ।।

—तुलसी

प्राक्कथन

'तुलसीकृत कवितावली का अनुशीलन' नामक पुस्तक मेरी पहली कृति है, जो प्रकाश में आ रही है। पुस्तक आज से कई वर्ष पहले लिखी गई थी परन्तु प्रकाशन का समय अब आने पाया है। विद्यार्थीकाल में ही मेरी इच्छा 'कवितावली' पर कुछ लिखने की थी। आज वह इच्छा पूर्ण हुई है। यदि मेरे इस प्रयास से सुधी वृन्द पाठकों को कुछ भी उपलब्धि हुई तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

इसके प्रबन्ध में जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उनके रचयिताओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ।

पुस्तक प्रचार के प्रबन्धक श्री अशोक कुमार गुप्त की लगन से ही पुस्तक प्रकाश में आ रही है। अतः उनको भी धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रूफ रीडिंग सावधानी से की गई है अगर प्रमादवश इसमें कोई त्रुटि हो तो पाठक वर्ग क्षमा करेंगे। अस्तु!

—डॉ० भानुकुमार जैन

अनुक्रमणिका

१	तुलसी का जीवन वत्त	६ २३
२	कवितावली का युग-दशन	२४ ३६
३	रचना काल	३७ ४१
४	प्रतिपाद्य	४२ ५०
५	कवितावली मे भक्ति भक्त और भगव‍त का स्वरूप	५१ ७४
६	कवितावली का काव्यरूप	७५ ७६
७	कवितावली एक मुक्तक रचना	८० ८७
८	रस योजना	८८ ६७
६	अलकार विधान	६८ ११२
१०	छ‍द विधान	११३ ११८
११	भाषा और शली	११६ १३५
१२	दोष दशन	१३६ १४०
१३	तुलसी साहित्य म कवितावली का स्थान	१४१ १४३

तुलसी का जीवन-वृत्त

कवि कुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी साहित्य की उन विभूतियों में से एक हैं जिन्होंने जीवनपर्यन्त साहित्य-साधना करके साहित्य में वर्धन किया और ऐसे एसे ग्रन्थ रत्न प्रदान किये जिनकी उज्ज्वल आभा से साहित्य मन्दिर आलोकित और आह्लादित हो उठा है। रामचरितमानस एक ऐसा ही रत्न है, जिसने न केवल हिन्दी संसार को ही प्रकाशित किया है अपितु संसार के साहित्य रसिकों और कला कोविदों के अन्तर्मन को भी आकृष्ट किया है। कवि होने के साथ ही साथ तुलसी एक महात्मा और भक्त भी हैं। सम्भवतः इस कथन की सत्यता को भी कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि तुलसी भक्त पहले हैं और कवि बाद में। परन्तु उनका भक्त रूप ही वास्तव में कवि रूप के साथ इतना संपृक्त हो गया है कि दोनों में पार्थक्य करना सहज भी नहीं है। राम का चरित्र ही कुछ असाधारण विशेषता को लिए हुए है कि जो कोई भक्ति की भावना लेकर उनके समीप पहुंचता है वह निश्चित रूप से कवि—कवि ही नहीं महाकवि और कभी कभी विश्वकवि भी बन जाता है। राम के काव्यमय रूप की ऐसी झांकी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

> राम ! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
> कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥

निस्सन्देह तुलसीदास विश्व कवि हैं और वे हिन्दी में उसी प्रकार शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में पारदर्शिनी प्रतिभा के कलाकार कालिदास और अंग्रेजी-साहित्य में नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के कलाकार शेक्सपियर हैं। इस महान् कवि के जीवन संबंधी सामग्री की ओर जब दृष्टिपात किया जाता है तो सब ओर अन्धकार सा ही दिखलाई पड़ता है। उसकी प्रामाणिक जीवनी न पाकर कण्ठ भर आता है और हृदय अवसाद का अनुभव करता है। परन्तु उसी क्षण 'जाति पांति पूछै नहिं कोई हरि को भजै सो हरि को होई' यह समझकर आत्म-परितोष करना पड़ता है कि इन भगवान के भक्तों को चाहिये ही क्या था? वे तो हरि के ही होने में अपने जीवन का सौभाग्य समझते थे। वे अपने नाम और यश की चिन्ता ही नहीं करते थे, उन्हें तो स्वांतः सुख के अतिरिक्त और कुछ अभिलषित था ही नहीं।

भारतभूमि का यह दुर्भाग्य रहा है कि इसने सरस्वती के अनेकानेक अमर पुत्रों को जन्म दिया और फिर उनको अज्ञात कुलशील बना दिया। धर्मप्राण भारत देश इसके अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था। यही कारण है कि संस्कृत के विश्वकवि कालिदास का जीवन वृत्त तमसाच्छन्न है। हिन्दी के अनेक कवियों—

कबीरदास, सूरदास भूषण आदि के विषय में किसी भी खास आधार के बिना निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अधिकारी वर्ग होने के कारण इनके जीवन सूत्रों को पिरोने के लिये अनेक प्रकार के कल्पित और मनगढ़त संबंध जोड़े जाते हैं। कभी-कभी तो जनश्रुतियों तथा किंवदन्तियों का सहारा लेकर दूर की कौड़ियाँ लाई जाती हैं। इनकी कृतियों में जो थोड़ी बहुत सामग्री मिल जाती है उसी पर संतोष करना पड़ता है।

ऐसे ख्यातिलब्ध कवियों के जीवन चरित्र को दो प्रमाणों के आधार पर साहित्य में परखा जाता रहा है। एक प्रमाण आंतरिक है और दूसरा बाह्य। इन्हीं को अन्तःसाक्ष्य तथा बहिःसाक्ष्य भी कहते हैं। अन्तःसाक्ष्य उन प्रमाणों को लेकर चलता है जो स्वयं कवि ने अपने ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखेर दिए हैं तथा बहिःसाक्ष्य उन प्रमाणों को लेकर चलता है जो कि अन्यों के द्वारा किसी कवि के विषय में उल्लिखित किये जाते हैं। बहिःसाक्ष्य में सबसे बड़ा खतरा यह देखा गया है कि उसमें अनेक असंबद्ध तथ्य स्वतः ही प्रवेश पा जाते हैं। कभी तो कवि की प्रशंसा के इतने पुल बाँधे जाते हैं कि उनमें से नीर क्षीर का निर्णय करना ही असम्भव हो जाता है। महाकवि तुलसी के जीवन चरित्र को भी इन्हीं दोनों साक्ष्यों के आधार पर परखा गया है। यहाँ पर प्रमुख रूप से अन्तःसाक्ष्य का ही आश्रय लिया जा रहा है क्योंकि कवितावली में तुलसी ने विशेष रूप से तथा अन्य कृतियों में साधारण रूप से अपने जीवन के विषय में जो बातें कही हैं वे अधिक प्रामाणिक हैं क्योंकि कवि द्वारा कही गई हैं और उनमें किसी प्रकार का बाह्य लपेट नहीं है। कवितावली में विशेष रूप से जीवन परिचय देने के दो कारण दीखते हैं। एक तो यह उनकी अन्तिम रचना है और दूसरा, वे अपने सम्पूर्ण जीवन में वेदना व्याकुल रहे थे और उस वेदना को वाणी देना भी चाहते थे।

अब कतिपय शीर्षकों के अन्तर्गत तुलसी के जीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है। वे शीर्षक हैं—जन्मभूमि, जन्म तिथि, माता पिता, नाम, शैशवावस्था, परिवार और जाति, गृहस्थ जीवन, तीर्थाटन और देशाटन, प्रसिद्धि प्रसार, आत्म ग्लानि, रुग्णता और वृद्धावस्था, कृतियाँ और समय संकेत।

जन्म भूमि

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि ही बहुत विवादास्पद है। विद्वानों में इस विषय को लेकर दो दल बन गये हैं। एक दल उन विद्वानों का है जो उनकी जन्मभूमि राजापुर को मानता है जो कि उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के अन्तर्गत है। दूसरा दल उन विद्वानों का है जो उत्तर प्रदेश के एटा जिले में ही स्थित सोरों को तुलसी की जन्मभूमि मानता है। इसके प्रमाण के लिए उनकी ही 'रामचरित मानस' में यह पंक्ति 'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत' उद्धृत की जाती है। प्राचीन परम्परा तो राजापुर को ही जन्मभूमि मानने में ही अपना अभिमत प्रकट करती है। अन्तिम निर्णय तो अभी भविष्य के गर्भ में छिपा है। भविष्य

म, सभव है कि तुलसी सम्बन्धी अनुसधान इस विवाद को समाप्त करने म सहायक सिद्ध हो।

जन्म तिथि

जन्मभूमि के समान तुलसीदास की जन्म तिथि भी अज्ञात है। उन्होंने अपनी किसी रचना म इसका उल्लेख भी नहीं किया है जिसके कारण कुछ भी इत्मित्थम कहा जा सके। इसीलिए विद्वानों ने अपने मत के अनुसार तुलसी की जन्म तिथि अपने ग्रन्थों म बतलाई हैं। कुछ विद्वान् सवत १५८३ को मानते हैं कुछ सवत १५८९ मानते हैं और कुछ सवत १५५४ को। गिर्वासिह सेंगर को सवत १५८३ मान्य है। प० रामगुलाम द्विवेदी को सवत १५८९ मान्य है। इनके अतिरिक्त बाबा वेणी माधवदास अपने गोसाई-चरित म जीवन चरित का विवरण देते हुए गोस्वामी का जन्म सवत १५५४ मानते हैं। जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि ये वेणी माधवदास जी हमारे बाबा गोस्वामी जी के शिष्य थे, परन्तु इनके द्वारा लिखित चरित म बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनको न तो प्रामाणिक ही माना जा सकता है और न जिस पर सहसा विश्वास ही किया जा सकता है। प्राय सभी विद्वान इन्हीं तिथियों म से किसी न किसी को मानकर जन्म तिथि का उल्लेख करते हैं, परन्तु सम्यक प्रमाण के बिना यह अन्धानुकरण ही कहा जायगा।

माता पिता

तुलसीदास ने अपने माता और पिता के विषय म भी स्पष्ट रूप से अपनी रचनाओं में स्पष्ट रूप से अपनी रचनाओं म कुछ नहीं लिखा है। कहा जाता है कि इनकी माता का नाम हुलसी था और पिता का नाम आत्माराम था। इनकी माता के हुलसी नाम के लिए प्राय गोस्वामी समसामयिक और मित्र अब्दुल रहीम खानखाना का यह दोहा उल्लिखित किया जाता है—

सुर तिय नर तिय नागतिय, अस चाहति सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय॥

इसके अतिरिक्त 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में इस बात का उल्लेख मिलता है कि—

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी तुलसीदास हिय हिय हुलसी सी।

पिता के विषय म तो तुलसी का काव्य भी मौन है। जो कई नाम उनके पिता के बतलाये जाते हैं वे कल्पना मात्र ही हैं। सभव यही लगता है कि तुलसी के माता पिता दोनों उनके जन्म लेते ही स्वर्ग सिधार गये क्योंकि तुलसी अभुक्त मूल नक्षत्र म उत्पन्न हुए थे और मगन (ब्राह्मण) कुलोद्भूत तुलसी के माता पिता को अपने पुत्र का बधावा सुनने म भी कष्ट और पाप की ध्वनि सुनाई दी जैसा कि 'कवितावली' की इन पंक्तियों से परिलक्षित होता है—

जायो कुल मगन बधावनो बजायो सुनि।
भयो परितापु पापु जननी जनक को—उत्तर काण्ड, पद ७३

नाम

नाम के विषय में तुलसी ने अपनी कई रचनाओं में उल्लेख किया है। उनका बचपन का नाम 'रामबोला' था और बाद में वही तुलसी और तुलसीदास में परिवर्तित हो गया। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं —

> साहिब सुजान जिन स्वान हू को पच्छ कियो
> रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को—कवितावली उत्तर० पद १००
>
> राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम
> काम यहै नाम द्वै हौं कबहूं कहत हौं॥ (विनयपत्रिका)

लगता है कि जन्म लेने पर इन्होंने राम का नाम बोला हो और रामबोला कहलाने लग गये हों। राम के अनन्य भक्त होने के बाद ही ये तुलसीदास बने होंगे क्योंकि पहले तो इनकी गिनती घास में थी और बाद में तुलसी [सुगंधित और गुणकारी पत्तों वाला पौधा] में होने लगी होगी जैसा कि इन उदाहरणों से ज्ञात होता है—

> कहि गिनती महँ गिनती जस बन घास
> नाम जपत भय तुलसी तुलसीदास॥ (बरवैरामायण)
>
> रामु नाम को कल्पतरु कलि कल्यान निवासु
> जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु। (मानस बालकाण्ड)

शैशवावस्था

तुलसीदास ने अपनी शैशवावस्था पर प्रभूत मात्रा में लिखा है। कवितावली के अनेक पदों से ज्ञात हो जाता है कि तुलसी का शैशव सुखमय नहीं बीता। पदों में बड़ी मुखर अभिव्यक्ति को देखकर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि तुलसी ने पदों को अपने नयन नीर से लिखा है। जिसके माता पिता जन्म देकर ही महाप्रयाण कर गये हों, संसार उसके लिए कितना निर्दय और निर्मम हो जाया करता है इसकी कल्पना ही दिल हिलाने के लिए काफी है। निराश्रित होकर उसे दर दर की ठोकर खानी पड़ती है और भिखारी बनकर द्वार-द्वार भीख माँगनी पड़ती है क्योंकि पेट भी आग के लिए सब कुछ करना पड़ता है। विधाता का विधान ही कुछ ऐसा है कि यदि एक बार विपत्ति आ जाय तो फिर पहाड़ के पहाड़ टूट पड़ते हैं और उनकी समाप्ति के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं वे कमर भी तोड़ देते हैं। फिर तो विधि की लीला पर ही विश्वास करना पड़ता है क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं है। तुलसी चार फल में ही विश्वास थे और इसी से यदि चार फल भी मिल जाते तो ... समझते कि चारों पुरुषार्थों (धर्म अर्थ काम मोक्ष) का फल मिल गया। ऐसी दशा के उदाहरण इस प्रकार हैं—

जाति के, सुजानि के कुजाति के य टगि यम
खाए टूक सबके विन्ति बात दुना सो
बारे ते ललात विललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक का ।
(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ७२, ७३)

परिवार और जाति

तुलसीदास ने अपनी जाति तथा कुल व परिवार के विषय म भी अपनी कृतियो म कम लिखा है परन्तु जो कुछ लिखा है उसमे यह ज्ञात होता है कि भारत भूमि म जन्म लने और उच्च परिवार म उत्पन्न हाने को इन्हाने *सौभाग्य ही माना* है। उच्च परिवार से तात्पय यही निकलता है कि य मगन कुल (ब्राह्मण) म पदा हुए थे जिसको उन्होने इस प्रकार व्यक्त किया है—

जायो कुल मगन बधावनो बजायो सुनि
भयो परितापु पापु जननी जनक को
भलि भारत भूमि भलें कुल जन्मु समाजु सरीर भलो लहि कै।
(कवितावली उत्तरकाण्ड, पद ८३, ३३)

विनयपत्रिका' म एक पक्ति आती है जिसम 'सुकुल' शब्द आया है। इसको लेकर कुछ विद्वाना ने यह अनुमान लगाया ह कि तुलसी 'सुकुल' जाति थे परन्तु वहा पर यह शब्द किसी जाति विशेष का बाधक न हाकर उच्च कुल का ही बोधक है, *यथा*—

दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को

निश्चित ही 'सुकुल तथा ऊपर की पक्ति म भल कुल जन्मु एक ही है। दोना पक्तिया स यह भी पता चलता है कि उनका सरीर सुन्दर और रूपवान था।

इन प्रमाणा के अतिरिक्त सन्तो की तरह इन्हाने अपने को जाति-पाति हीन भी बतलाया है। जब ये अपने को इस प्रकार स कहने लगे तो लोग नीच कहकर इनको चिढाते भी होंगे। कोई इन्ह धूत कहता होगा और कोई अवधूत (औघून), कोई उच्च कुल का कहता होगा और कोई जुलाहा कहने मे किसी भी प्रकार का सकाच न करता होगा। तुलसी ने इन उपालम्भो की चिन्ता नही की है। उन्होने तो माँगकर खाना और देवालय म सोना तथा भगवान का भजन करना ही अपने जीवन का परम लक्ष्य बनाया जसा कि इस पद म मिलता है—

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूतु कहौ जुलहा कहौ कोऊ
काहू की बेटी न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ
तुलसी सरनामु है राम को, जाको रुच सो कहै कछु ओऊ
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

तथा—

मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति
मेरे कोउ काम को न, हौं काहू के काम को।
(कवितावली, उत्तर० पद १०८ १०७)

गृहस्थ जीवन

तुलसी का पारिवारिक जीवन कैसा था उनका विवाह हुआ था या नहीं उनके कोई सन्तान भी थी या नहीं आदि बातें भी विवादास्पद हैं। उनकी रचनाओं में आये हुए उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका गार्हस्थिक जीवन कुछ दिनों तक अवश्य चला था परन्तु सन्तान उनके कोई भी नहीं थी। इसलिए उन्होंने कवितावली आदि ग्रन्थों में ऐसी बातें कही हैं—

काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब
काहू की जाति बिगार न सोऊ। (कवितावली उत्तर० पद १०६)

— — —

कहैं पोचु सो न सोच न संकोच
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहतु हौं। (विनयपत्रिका)

— — —

इधर सारा संबंधी नवीन सामग्री के प्रकाश में आ जाने से यह भी ज्ञात हुआ है कि इनका विवाह रत्नावली नामक कन्या से हुआ था तथा ये उसको अत्यधिक प्रेम भी करते थे। एक बार पत्नी के मायके चल जाने पर ये भी वहाँ पर पहुँच गये तो पत्नी ने इनको बुरा भला कहा और डाँटा डपटा। उसका यह फल हुआ कि ये संसार से संन्यास लेकर निकल पड़े और फिर पुत्र कलत्र का कभी ध्यान भी नहीं किया। पत्नी की डाँट का यह पद बहुत ही प्रसिद्ध है—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ
अस्थि चममय देह मम तासु एसी प्रीति
तसी जो श्री राम मह होति न तौ भवभीति।

सच तो यह है कि इस विषय में बहुत सी बातें कपोल कल्पित ही ठहरती हैं।

तीर्थाटन और देशाटन

तुलसी का जन्म कहीं भी हुआ हो परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि वे साधु संन्यासी बनकर स्थान स्थान पर गये होंगे और तीर्थ प्रदेशों की यात्राएँ की होंगी। यह चाहे उन्होंने विरक्त होकर किया हो चाहे अपने आराध्य देव सीतानाथ राम का गुणगान करने के लिए किया हो। पहले तो अपने जन्मस्थान से सूकर क्षेत्र आये ही होंगे जहाँ पर कि गुरु से उन्होंने राम की कथा सुनी थी ? मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत। हिंदी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल ने जिला गोंडा में 'सूकर क्षेत्र' को एक पवित्र तीर्थ माना है जैसा कि इन पंक्तियों में विदित है सूकर क्षेत्र गोंडे के जिले में सरजू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है जहाँ आसपास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है। मार उपद्रव की जन्म है सूकर क्षेत्र जो भ्रम से सोरों समझ लिया गया।[1] वहाँ से ये चित्रकूट, प्रयाग काशी अयोध्या जगन्नाथपुरी तथा रामेश्वर आदि स्थानों पर भी गये और रहे। वारिपुर दिगपुर सीतामढ़ी भी ऐसे ही स्थान हैं जिनकी पवित्रता तुलसी की इन पंक्तियों में अभिप्रेत है—

> विटप महीप सुरसरित समीप सोहै
> सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी
> वारिपुर दिगपुर बीच विलसति भूमि
> अंकित जो जानकी चरन जलजात की। (कवितावली उत्तर० पद १३८)

जहाँ पर राम सीता और लक्ष्मण का कभी निवास हुआ था उस चित्रकूट का सेवन राम के स्नेह को पाने के लिए तुलसी महत्वपूर्ण बतलाते हैं—

> जहाँ बनु पावनो सुहावने बिहग-मृग
> देखि अति लागत अनंदु खेत-खूट सो
> सीता राम लखन निवासु, बास मुनिन को
> सिद्ध साधु साधक सब बिबेक बूट-सो
> झरना झरत झरि सीतल पुनीत बारि
> मन्दाकिनि मंजुल महेस जटाजूट सो
> तुलसी जौं राम सो सनेहु साचो चाहिए तौ
> सेइये सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो। (कवितावली उत्तर० पद १४१)

राम की जन्मभूमि अयोध्या को भी तुलसी ने अपना निवास बनाया था जिसमें रहकर उन्होंने राम का सुयश अपने जगत्प्रसिद्ध रामचरितमानस में गाया (जिसको लिखने में ३ वर्ष और ७ महीने लग गये)।

> संवत सोरह सौ एकतीसा करउँ कथा हरिपद धरि सीसा
> नौमी भौमवार मधुमासा अवधपुरी यह चरित प्रकासा। (मानस)

वाराणसी में तो तुलसी के जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत ही हुआ। काशी से इधर उधर भी गये परन्तु काशीवास का लाभ उन्हें काशी में ही ले आया। भूतनाथ की पावन पुरी में रहकर तथा भागीरथी के तीर का नीर पीकर तुलसी ने जाने कितने संवत्सर बिताये होंगे कौन कथा कह सकता है—

> मुक्ति जनम महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर
> जहँ बास संभु भवानि सो कासी सेइय कस न। (मानस)

---

[1] 'शुक्लकृत हिंदी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १२६, सस्करण दसवाँ

सेइय सहित सनह देह भर, कामधेनु कलि कासी। (विनयपत्रिका)

भागीरथी जलु पान करा अरु नाम ह राम के लत निते हौं(कवितावली)

दवसरि सवा वामदव गाउँ रावर हा
नाम राम ही के मागि उदर भरत हौ। (कवितावली)

प्रसिद्धि प्रसार

काशी म जब तुलसी रहा करत थ तो उनकी प्रसिद्धि बहुत फल गई थी। वे जनता म राम भक्त क रूप म स्याति प्राप्त कर चुके थे। कहा जाता ह कि उनके दशन को लाग अच्छा समझत थ और इसी कारण वे उनसे मिलन के लिए भी जाया करते थ। राज समाज तक भी उनका नाम पहुँच गया था। समाज म उनकी प्रसिद्धि महामुनि [बाल्मीकि] क रूप म हो गई थी। यह सब प्रताप भगवान राम का ही समझना चाहिए जिसका गुणगान करने पर तुलसीदास भाँग से भाँडे होने पर भी तुलसी कहलाय। तुलसी जस बगन (दम्भी) को हस (विवेकी) मे बद लने वाले, गधे पर चढन वाल (दीन हीन और तुच्छ) को गजराज पर चढाने वाले (उच्च आसन पर बिठाना) मिट्टी (पददलित) जस का पहाड (उच्च) बनाने वाले आधा कौडी वाल को लाखा का बनाने वाल अधम जस का महामुनि कहलवाने वाले तनक से तिनके का गिरि स भा गुर कर देन वाल छाछी को बिललाने वाले का सुगंधित दधि व दूध का सुनसाकर (खिलान वाले) भगवान राम ही तो थे—

राम नाम ललित ललामु कियो लाखनि का
बडो कूर कायर कपूत कौडी आध को। (कवितावली)

राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रतापु
तुलसी सो जग मनिअत महामुनी सो। (कवितावली)

छाछी का ललात ज त राम नाम क प्रसाद
खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है। (कवितावली)

तुलसी न अपनी अन्य कृतियाँ म भी इस बात क सकेत दिए हैं कि उनका सम्मान होने लगा था और बहुत म उनकी सहायता करना भी अपना धम समझने थे। विनयपत्रिका दोहावली और बरवै रामायण म आय सकेत इस प्रकार हैं—

पतितपावन राम नाम सा न दूसरा
सुमिरि सुभूमि भया तुलसी सा ऊसरा। (विनयपत्रिका)

केहि गिनती महँ गिनती, जस बन घास
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास। (बरवै)

अन्तःसाक्ष्य में आये हुए महामुनी शब्द की महत्ता उस समय और भी बढ़ जाती है जबकि बहिःसाक्ष्य में भी इसका उल्लेख मिल जाता है। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास ने अपने ग्रन्थ में तुलसी विषयक एक पद लिखा है जिसमें उन्होंने तुलसी को वाल्मीकि तक कहा है। पद इस प्रकार है—

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी
रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।

अन्तःसाक्ष्य से यदि बहिःसाक्ष्य की पुष्टि हो जाय तो उस समय फिर किसी प्रकार के सन्देह के लिए कम अवकाश रहा करता है। अतः यह तो निश्चित ही है कि तुलसी कलिकाल के वाल्मीकि का गौरव पा ही गये थे।

जब तुलसी की इतनी प्रसिद्धि हो गई थी तो यह भी स्वाभाविक था कि कतिपय कदाचारी पुरुष अवश्य ही उनसे जलने लगे होंगे। वे उनकी ख्याति को भी सहन करने के लिए तैयार न होंगे और चिढ़कर उनको भगाने या कष्ट पहुँचाने का दुस्साहस भी करते होंगे। बहुत से नीच उनकी निन्दा करना भी न चूकते होंगे जैसा कि दोहावली में कहा है—

'रावन रिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि' (दोहावली)

कवितावली में एक प्रसंग आया है जिसमें तुलसी ने काशीनाथ शिवजी से अपने को सताये जाने की कथा का निवेदन किया है। इसमें उन्होंने कहा है कि हे! बाबा विश्वनाथ! मैं आपकी पुरी में रामनाम से माँगकर पेट पालन करता हूँ परन्तु मुझे राम का भक्त समझकर आपके भक्त (शिवभक्त) न जाने क्यों बलपूर्वक बाहर जाने के लिए बाध्य कर रहे हैं जबकि मैं किसी का कुछ न तो लेता ही हूँ और न कुछ बिगाड़ता ही हूँ। मेरे राम से उलाहना आप न पावें इसीलिए मैं अत्यन्त दीन होकर यह प्रार्थना आपको सुनाकर कष्ट दे रहा हूँ—

देवसरि सेवौं, बामदेव गाउँ रावरे ही
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर, देव! दीन द्वारें गुदरत हौं

पाइ क उराहनो उराहना न दीजो माहि
बाल कला कासीनाथ कह निजरत हौं—उत्तर० पद १६५

उनके 'रामचरितमानस' को लेकर भी अनेक उपसर्ग तुलसी पर अवश्य ही किये गए थ और उसके विशिष्ट विषय को लेकर बहुत चर्चा चली थी। उसको जलाने चुराने के और नष्ट कर देने के भी प्रयत्न किए गये थे। इस विषय म कुछ बाह्य सामग्री का उपयोग यहाँ किया जाता हैं। कहा जाता है कि रामचरितमानस की उच्चता और पवित्रता को लकर जब विद्वेषी विद्वानो न वितडावाद खडा किया, तो उसकी परीक्षा का प्रयत्न सोचा गया। इस के लिए काशी के विश्वनाथ मन्दिर म सध्या क समय वेद शास्त्र और पुराणो के नीचे रामचरितमानस रख दिया गया और उसका द्वार बन्द कर दिया गया। प्रात काल को जब मन्दिर खोला गया तो वेदादि के ऊपर रामचरितमानस को देखकर उन विद्वानो ने दाँतो तले उगली दबाई और फिर उन्होंने तुलसी स क्षमा ही नहीं मागी अपितु भूलकर भी उनकी निन्दा न करने का वचन दिया। वे लज्जित ही नहा हुए अपितु तुलसी के प्रिय भक्त भी बन गये। इस घटना स पहले यही 'मानस' का वाद विवाद मुकदमे का रूप धारण करके तुलसी के समसामयिक और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित श्री मधुसूदन सरस्वती की अदालत म भी निर्णय के लिए गया था। उनको इस ग्रन्थ को देखकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी और उन्होने इस की प्रशसा म यह श्लोक लिखकर अपना पूज्यभाव व्यक्त किया था—

आनद कानने ह्यस्मिन्जगमस्तुलसीतरु
कवितामजरी भाति रामभ्रमर भूषिता।

अर्थात्— जिसकी कवितारूपी मजरी (बौर स लदी डाली) राम रूपी भ्रमर से भूषित होकर शोभायमान है वह तुलसीदास इस वाराणसी रूपी आनन्द कानन मे सुवासित सजीव तुलसी वृक्ष बनकर सुगन्ध फैला रहा है।

आत्म ग्लानि

तुलसी राम के अनन्य भक्त थ और उनकी भक्ति दास्य भाव की थी। इसी दास्य भाव की उपासना म तुलसी ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही व्यतीत किया। 'सिया राम मय सब जग जानी करौं प्रनाम जोरि जुग पानी' म विश्वास रखने वाले तुलसी की इस भक्ति के प्रति इतनी अडिग आस्था थी कि इसको छोडकर वे कभी मर्यादाहीन नही हुए जस कि सूरदास न पहल तो दास्य भाव की भक्ति लिख डाली और बाद म इसकी उन्होने उपेक्षा ही कर दी। दास्य भाव की भक्ति म भक्त भगवान का दास बनकर उसके सामने गिडगिडाता है दीन हीन होकर अपने उद्धार के लिए अनगिनत अर्जियाँ देता है जिनम अपने को बुरे स बुरा कहता है ताकि भगवान् गद्गद् हो जायें तथा दास को प्राप्य उसको मिल जाय। दास अपने को जन्म जन्मान्तर का पतित मानकर चलता है और पतित पावन क सामने अपने पापो की गठरी खोल कर रख देता है। दास का घिघियाना, हा हा खाना इस बात का

प्रमाण होता है कि उमन अपा आपका पूण रूप स भगवान् को सकपित कर दिया है। अब भगवान् की इच्छा है कि उस ससार-सागर स पार उतारें या उसी मे सरावार कर द । तुलमी न भी अपन को भगवान् राम का समर्पित कर दिया है और नीच म नीच कहकर दीनबन्धु दीनानाथ के कण-कुहरा म अपन उद्धार के लिए आवाज पहुचाइ है। उनका मूल मन्त्र है—

राम सा बडो है कौन मोमो कौन छाटो

राम सा खरा है कौन मोसो कौन खोटा । (विनयपत्रिका)

कवितावली क उत्तरकाण्ड म तो वास्तव म तुलसी क भाषा का खजाना ही खुल गया है । गद्दे म गन्दा शब्द उन्होंने अपन लिए प्रयुक्त किया है निकृष्ट स निकृष्ट विशेषण का व अपने लिए खोजकर लाये हैं सस्कृत अरबी फारसी किसी भी भाषा का शब्द हो उसे लाकर अपना पीन-पातकीपन पुष्ट किया है अपन को कूर कूकर का बाना पहिनाकर कौरा-कौरा के लिए भटकाया है और रमना से निसिवासर राम का नाम रटवाया है। दोषा के खजाने के नग, हीरा मोती, पन्ना दर्शनीय हैं। भाडौ भाग मो दगाबाग कूर धीग धमधूसर लोन, कुपून धावो क मो कूकर पातक-पीन मलीन नीच निरादर भाजन लाभ मोह काम कोह लोप कोम कलिमलि को निधानु कुल करतूति हीन साधन विहीन बुधिक्रम हीन ग्यान हीन, गुनहीन भाव भगति विहीन, भागहीन विभूति हीन कूर और दगाबाज को तो बार बार व व्यवहार म लाते है। कुछ उदाहरण इस प्रकार दिये जाते हैं—

राम दशरत्थ क समथ तरे नाम लिएँ

तुलसी-स कूर को कहत जग राम को।

— — —

रुग्णता और वद्धावस्था

तुलसी का जीव एस अभक्तमूल नक्षत्र म हुआ था कि उमन माता पिता दोना को ससार म आकर यमपुर भेज दिय । दीन व दया का पात्र बनकर जसे तस राटी खाकर राम का नाम कीर की तरह रटकर अपन जीवन का बिताया था। अन्तिम समय म फिर वेदना न आकर दबोच दिया । वह अपने जीवन की आग म तप-तपकर कु दन बनन ही वाला था कि शारीरिक ताप न एसा तपाया कि जाने की आस ही नही छाडी । दहिक दाह न उस क्षत विक्षत कर दिया और वह जीवन लालसा का छोडकर भरण लालसा करन लगा । असाध्य राग उनके प्राण लकर ही गया । कवितावली क अन्तिम पद्य म ही वदना विदित होने लगती है। यह बाहु वेदना ही थी जो कि बाद म सम्पूण शरीर म प्रवश पा गई । हनुमान बाहुक' म तुलसी न सम्पूण शरीर क रागग्रस्त हान का उल्लेख इस प्रकार किया है—

पाँय पीर पट पीर बाहु पीर मुह पीर

जरजर सकल शरीर पीर भई ह।

बहुत ही वृद्धावस्था की स्थिति में आकर तुलसी । रोग । ही पन
पन गया है जो असमय में ही मुख आँ हो और उ, तेर लिया हो—

भेरि लिया गाति मुजाति तुजाति उभ
पामर जत पा पग भुरि पार्ट है।

जब पीड़ा असह्य हो जाता है तो व्यक्ति छटपटाने लगता है पर पटकने
लगता है चीखने चिल्लाने लगता है तो आँसू बहाने लगता है पाला का स्मरण
करने लगता है किसी दास की मानने लगता है तुलसी भी ऐसा पना है—

आपन ही पाप त तिपाप त कि मार तें
बड़ा है बाह पर्य, महा न कहा जात है।

इस भयङ्कर रोग से निवारण के लिए तुलसी ने हनुमानबाहुक की रचना
४४ पदों में की है परन्तु वे उनसे मुक्त नहीं हो सके जिस प्रकार कि कालिदास
बाद से मुक्त हो गये थे । हनुमानबाहुक में उन्होंने हनुमान की प्रार्थना इन पदों में
की है—

साहसी समीर के दुलार रघुनाथ जू के
बोर पीर महावीर बेगि ही निवारिए ।

महावीर ठाकुर बरारी बाहु पीर क्यों न
लरिली ज्यो सात पान ही मरारि मारिए

कवितावली में भी तुलसी ने भगवान् भूतनाथ से इस विषम वेदना का
निवेदन किया है और अपना मत यह प्रकट किया है कि मेरे शरीर में अत्यधिक
कष्ट हो रहा है । अतः या तो आप मुझे मार ही डालिए जिससे काशीवास का फल
प्राप्त हो जाय या जीवित कर दीजिए जिससे मैं नीरोग हो जाऊ । यह रोग मेरे
पीछे भूत की तरह पड़ गया है जो मुझे व्याकुल बना रहा है । अतः आपके श्री
चरणों की शरण इस तुलसी को इष्ट है ।

कृतियाँ

इतना विवेचन कर लेने के उपरान्त यह सर्वसम्मति से कहा जा सकता है
कि तुलसी अपने अन्तिम समय तक रचना करते रहे परन्तु उन्होंने कितनी रचनाएँ
रचीं इसका कोई भी प्रमाण उनकी रचनाओं में उपलब्ध नहीं होता । रामचरित
मानस के विषय में उन्होंने अवश्य उल्लेख किया है, जो सम्भवतः इस बात का
द्योतक है कि उनको वही ग्रन्थ अपने सभी ग्रन्थों में अप्रतिम प्रतीत हुआ था ।
तुलसी नाम के हिन्दी साहित्य में और भी तुलसी हो गये हैं जिन्होंने राम के विषय
को लेकर रचनाएं की हैं और जिनका उल्लेख विद्वानों ने इन महात्मा तुलसीदास
की कृतियों के साथ कर लिया है । प्राचीन कवियों का यह दुर्भाग्य ही समझना
चाहिए कि वे मुद्रण के अभाव में अपनी रचनाओं को सुरक्षित नहीं रख सके ।

कालान्तर में उनकी रचनाएँ अन्य कवियों की रचनाओं में दूध पानी की तरह मिल गई जिनको अलग-अलग करना भी असम्भव है। तुलसी अपने समय के महान् कवि थे और यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि वे उस समय इतने छाये हुए थे, कि अन्य कृतियाँ भी इन्हीं के नाम पर चलने लगी। विद्वानों ने तुलसी के पच्चीस-तीस ग्रन्थ गिनाये हैं परन्तु वे सभी तुलसी के नहीं हैं, इसकी भली भाँति परीक्षा हो चुकी है। 'रामचरितमानस' के मर्मज्ञ और रामायणी प० रामगुलाम द्विवेदी ने तुलसी के १२ ग्रन्थ प्रामाणिक माने हैं, जिन्हें उन्होंने इस प्रकार से दिया है—

> रामलला नहछू त्यों विराग सदीपनी हू
> बरवै बनाइ बिरमाइ मति साइ की
> पारवती जानकी के मंगल ललित गाय
> रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाई की
> दोहा और कवित्त गीत बंध कृष्ण राम कथा
> रामायन विनै माहिं बात सब ठाई की
> जग में सुहानी जगदीश हू के मनमानी
> संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की ॥

इनके अतिरिक्त अन्य जो ग्रन्थ तुलसी रचित माने जाते हैं वे इस प्रकार हैं— छप्पय रामायण, राम सतसई, कुण्डलिया रामायण, करखा रामायण रोला रामायण, झूलना रामायण संकट मोचन बाहुक, हनुमान चालीसा, पदावली रामायण कवि धर्माधर्म निरूपण, पदावली रामायण तथा राम शलाका। इनमें जो बाहुक आया है उसे कवितावली का ही एक अङ्ग मान लिया गया है। इस तरह से देखने पर रामचरितमानस, विनयपत्रिका कवितावली (कवित्तावली) गीतावली दोहावली ये पाँच बड़े ग्रन्थ और रामलला नहछू कृष्ण-गीतावली बरवै रामायण जानकी मंगल वैराग्य संदीपनी और रामाज्ञा प्रश्नावली ये ७ ग्रन्थ छोटे ठहरते हैं। कोई छह बड़े और छह छोटे मानते हैं जैसा कि मानस के प्रसिद्ध टीकाकार बंदन पाठक ने कहा है—

> और बड़े खट ग्रन्थ के, टीका रचे सुजान
> अल्प ग्रन्थ खट अल्प मति, विरचत बंदन जान।

मृत्यु-काल और समय संकेत

तुलसी के अन्तिम प्रयाण का संकेत बहुत से विद्वान् कवितावली के उस पद में पाते हैं जिसमें कि उन्होंने प्रयाण-समय में रक्तवर्ण के क्षेमकरी नामक पक्षी को देखा था और जिसे उन्होंने सोच विमोचन पक्षी के रूप में गौरी या गङ्गा ही माना था। ऐसा पक्षी (चील) विषयक पद इस प्रकार है—

> कुंकुम रङ्ग सुअङ्ग जितो मुखचन्द सो चंद सों होड़ परी है
> बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है

गौरी कि गङ्ग विहङ्ग निवप कि मजुल मूरति माद भरी है
पखि सप्रेम पयान सम सब साच विमोचन छेमकरी है
(कवितावली उत्तर० पद १८०)

एक अन्य सकेत भी मिलता है जिसम तुलसी राम का यश वणन करके मौन हो जाना चाहते हैं और लोगा स कहत है कि मेरा समय मरने का आ गया है। अत मेरे मुख म सोना और तुलसी डाल दीजिए। दोहा इस प्रकार है—

राम नाम जस वरनि कँ, भया चहत अब मौन
तुलसी के मुख दीजिए अबही तुलसी मान। (तुलसी सतसई)

परन्तु यह आवश्यक नहा है कि तुलसा ने मरण समय ही पक्षी के दर्शन किए हा। किसी पक्षी आदि का देखना शुभदायी कभी भी माना जा सकता है। यात्रा आदि क लिए जब कोई निकलता ह तभी पक्षी आदि का दशन शुभ माना है। वास्तव म ये कुछ शकुन मात्र है जिनस लाग इष्ट और अनिष्ट का निणय कर लिया करते हैं। रही तुलसी (तुलसी क पत्ते भगवान पर भी चढाये जात है दवा आदि के काम भी आते है और पवित्र भी माने जाते है) और सोना (यह प्रथा है कि मरन पर व्यक्ति क मुख म साना डाल दिया जाता है) डालने की बात मो भी कोई विशेष महत्व नही रखती, क्योंकि पहले ता तुलसी सतसई तुलसी रचित नही मानी जाती और दूसरे यह कवल जनश्रुति भी हा सकता है। इस विषय म डा० रामकुमार वर्मा अपने हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास क पृष्ठ ३४८ पर लिखते हैं रामलाम का वणन कर तुलसीदास न मौन होन क पूर्व अपन मुख म सोना और तुलसी डालने की इच्छा प्रकट की थी इस भी जनश्रुति समझना चाहिए क्योंकि यह दोहा किसी प्रमाणिक प्रति म नही मिलता।

अब मरण तिथि और सन् सवत् भी देखना है कि तुलसा किस सवत म गोलोकवासी हुए। उनकी मरण तिथि क लिय यह दोहा बहुत ही प्रसिद्ध है—

सवत सोलह सौ असी असी गङ्ग के तीर
सावन सुकला सतमी तुलसी तज्यो सरीर।

तुलसीदास का पुण्यतन शरीर पाप विनाशिनी पुण्यतोया भागीरथी के पावन पुनीत पुलिन के असीघाट पर सवन सोलह सौ अस्सी की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन परलोकगामी होगया। आज भी उस घाट का तुलसी घाट क नाम स पुकारा जाता है। परन्तु बाबा वणीमाधवदास द्वारा रचित गोसाई चरित म मृत्यु तिथि कुछ भिन्न दी गई है जो इस प्रकार है—

सवत सोलह स असी असी गङ्ग क तीर
सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो सरीर।

—श्रावण कृष्ण तीज दिन शनिवार को तुलसी ने शरीर त्याग दिया। गणना यदि की जाय ता यही तिथि निश्चित और विश्वस्त मानी जानी चाहिए क्योंकि इसकी पुष्टि इस बात स की जाती है कि गोस्वामी जी के परम मित्र

काशी वासी टोडर के वंशज इसी तिथि को प्रतिवर्ष तुलसीदास के नाम पर सीधा दान किया करते हैं"—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'कवितावली के अतर्दान' के पृष्ठ ६१ से उद्धृत।

इस प्रकार राम नाम के परम भक्त का पूरा जीवन ही रामयश गान में लग गया। उसने राम नाम इतना गाया कि दूसरों को गाने के लिए कुछ छोड़ा भी नहीं। 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की वाणी का उद्घोष करने वाला यह कलाकार अपनी कृतियों में हरि कथा को ही अनन्त रूपों में गाता रहा। उसने चौपाइयों में कथा गाई, पदों में कथा गाई, कवित्तों में कथा गाई, गीतों में कथा गाई, दोहों में कथा गाई, बरवै में कथा गाई। कहने का तात्पर्य यही कि हर सम्भव रूप में उसने हरिकथा को गाया। राम का नाम भी उसने कीर की तरह रटा, चातक की तरह चाहा और श्वान की तरह निभाया। वह उसमें एक क्षण के लिए विचलित नहीं हुआ। अनेकों आंधियाँ आईं, प्रकार प्रकार के प्रभंजन आये, तरह-तरह के तूफान आये पर क्या मजाल कि तुलसी उनसे भयभीत हो जाय, कायर बन जाय और मार्ग छोड़कर पलायन कर जाय। उसने तो राम रस ही चाखा, राम रस ही बाटा और राम रस ही पिलाया। वह स्वयं पारस अजर अमर हो गया, कृत कृत्य हो गया, धन्य हो गया। उसका जीवन धन्य हो गया, उसकी कविता धन्य होगई, उसकी वाणी धन्य होगई, उसका शरीर धन्य हो गया। अन्य रस उसके सामने फीके थे, छूछे थे, नीरस थे, व निरापद नहीं कर सकते थे, निराकुल नहीं बना सकते थे। इसे मुक्ति अभिलाषित नहीं थी, सुगति काम्य नहीं था, निर्वाण वाञ्छनीय नहीं था, उसे तो यही इष्ट था कि राम के पादों में उसकी रति रहे और एक ही जन्म में नहीं, जन्म जन्मान्तर तक अक्षुण्ण बनी रहे—

> धरम न अरथ न काम रुचि, गति न चहौं निरवान
> जन्म जन्म रति राम पद यह वरदान न आन।

ऐसे ही कृती कवि तुलसी के विषय में श्री अयोध्यासिंह 'उपाध्याय' ने ठीक कहा है—

> कविता करके तुलसी न लसे
> कविता लसी पा तुलसी की कला।

ऐसा कवीश्वर यश काय से रस सिद्ध है पुण्यशाली है और चिरजीवी है—

> जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा
> नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्—भर्तृहरि

कवितावली मे युग-दर्शन

साहित्य समाज का दपण है। जिस प्रकार दपण म व्यक्ति का मुख मडल उसका रूप रङ्ग आकार प्रकार दीति-नीति मलिनता विभवता दीनता विनता तथा उसके नेत्र नासिका मुख मस्तक आदि अङ्ग प्रत्यङ्ग सभी स्पष्ट रूप स दष्टि गोचर हो जाते हैं उसी प्रकार साहित्य म भी समाज तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब हम देखन को मिल जाता है। उस समय म समाज गतिशील था या नहा धार्मिक वातावरण का सद्भाव उसम था या नहा समाज म जागरण था या नहा नतिक स्तर चरमसीमा पर था या नही इन सब बाना का यदि कही निराकरण जा सकता है तो उसे साहित्य म ही जा कि उस काल क प्रबुद्ध चेता कलाकारा क द्वारा सृजन किया गया था। सामाजिक धार्मिक राजनतिक आर्थिक सांस्कृतिक साम्प्रदायिक सभी प्रकार की परिस्थितिया का ज्ञान हमको साहित्य क द्वारा ही हो सकता है। यदि साहित्य न हो तो हमको किसी भी देश क या किसी भी समाज के मानसिक क्रियाकलापा को समझना कठिन हो जाय उनकी जानकारी पा जाना दुलभ हो जाय दुख दोष दारिद्र का विवरण मिलना दुष्कर हो जाय तथा बाह्य सघर्षों और आन्तरिक अन्तद्वन्द्वा की गतिविधि का किसी भी प्रकार म अनुमान लगाना कठिन हो जाय।

तुलसी जिस समाज म प्रादुर्भूत हुए थे वह समाज आज से चार सौ वष पुराना समाज था। उस समाज का धार्मिक रूप बहुत ही असन्तुलित था। देश पर मुसलमानी आधिपत्य था जो एक दीघकाल स चला आ रहा था और जो हिंदुआ क लिए हितकर भी नही था। मुसलमाना क आतक से जनता सशकित थी और उसका तथा उसके धम का त्राण करन वाला कोई भी नहा था। उन लोगो न देश को लूटा खसोटा ही नहीं था, अपितु नित नये आक्रमण करके जनता को भीरु और कायर भी बना दिया था। मुसलमाना म अकबर बादशाह ही एसा हुआ जिसन जनता पर विशेष अत्याचार नही किए। उसने उनकी धार्मिक प्रवत्ति को भी कोई ठेस नही पहुचाई और जहा तक हो सका वह लोगो को अभयदान ही देता रहा। धार्मिक नीति उसकी सहिष्णुता को लिय हुई थी जिसम अन्य धर्मों का भी मान सम्मान था। उसने हिन्दुआ क साथ म ववाहिक सबध भी स्थापित किए और हिन्दुआ को ऊँचे ऊँचे पद देकर सन्तुष्ट भी किया। उसने पहल स चली आती हुई कट्टता और धर्मान्धता का समूलोच्छेदन करने का सफल और स्तुत्य प्रयास किया जिसके लिए उसे सदव ही आदर की दृष्टि से देखा जायगा। उस जसा मुगल बादशाह भारतीय जनता की सुख समृद्धि की चिंता करन वाला और कोई हुआ ही नहा। उसके शासनकाल म बहुत समय स कराहती जनता ने चन की सांस ली थी और कुछ समय क लिए उसके मुरझाये हुए मन सुमन लहलहा उठे थ।

ऐसी हीन परिस्थितियो म स गुजरन वाले तुलसीदास अपनी आँखें बद कसे कर सकत थे। उन्होंने अपनी रचनाओ म उनका मार्मिक चित्र उतारा है। इस दष्टि से 'कवितावली उन परिस्थितियो का विवरण दने म पूणरूपण सक्षम है। यह बात नही है कि अन्य कृतियो म उस काल के चित्र नही हैं, परन्तु कवितावली' म अपेक्षाकृत अधिक हैं। जिन अन्य रचनाओ म तत्कालीन अवस्था के चित्र मिलते हैं, व है 'रामचरितमानस विनयपत्रिका 'दोहावली'। अब यह दखना है कि किस प्रकार तुलसी न उन परिस्थितियो की अभिव्यक्ति की है।

किसी भी युग की परिस्थितियो का मूल्याकन करत समय सुग मुविधा क अनुसार उनका इस प्रकार स वर्गीकरण किया जा सकता ह—

१ सामाजिक परिस्थितियाँ
२ धार्मिक परिस्थितियाँ
३ आर्थिक परिस्थितियाँ
४ साम्प्रदायिक परिस्थितियाँ
५ राजनतिक परिस्थितियाँ

(१) सामाजिक परिस्थितियाँ

यह पहल ही बताया जा चुका है कि समाज की अवस्था पतित थी, उसकी जीवन शक्ति समाप्त हो चुकी थी। अकमण्यता न समाज म प्रवश करके उसे खोखला बना डालने के लिए प्रण कर लिया था। जिस प्रकार यहा क राजाओ न अपने को दूसर क हाथो सौंपकर निश्चिन्तता ग्रहण कर ली थी उसी प्रकार प्रजा न भी कमण्यता को तिलाजिली देकर अकमण्यता अपना ली थी। तुलसी न उस समय के लोगो की इस भावना का एक सुन्दर चित्र खींचा है। वे कहत हैं कि कुचाली (निकम्मा और आलसी) सदव यही भावना भाता है कि कल मुझे तरुण शरीर मिल जायेगा, कल ही मुझे एश्वय और वभव प्राप्त हो जायगा कल ही मैं रण विजयी हो जाऊँगा, कल ही मैं राजा बन जाऊँगा और कल ही मैं सपूण काय सम्पन्न करने म समथ हो जाऊँगा। उसकी यह कुभावना उसे नष्ट कर देगी नष्ट कर रही ह तथा नष्ट करती आ रही है।

> 'कालिही तरुन तन कालिही धरनि धन
> कालिही जितौंगो रन कहत कुचालि है
> कालिहो साधौंगो काज, कालिही राजा समाज
> मसक ह्व कहै भार मेरे मेरु हालिहै
> तुलसी यही कुभाति घन घर घालि आई
> घन घर घालति है घने घर घालि है
> दखत सुनत समुझत हू न सूझ सोई
> कबहूँ कह्यो न काल हू को कालु कालि हू।'
>
> —(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद १२०)

अंग्रेजी के 'Tomorrow never comes' की बात को तुलसी ने किस ढग से उपस्थित किया है देखत ही बनता है। कल कल करत ही जीवन समाप्त हो जाता है परन्तु काम समाप्त नही हो पाता।

समाज मे भला के लिए भलाई भी कोई नहा करता हागा। लोग भला को नीची दृष्टि से भी देखते हागे। पल पल पर उनकी साधुता का नाजायज फायदा उठाया जाता होगा और इसके विपरीत दुष्ट और कुमार्गगामी आनन्द उडात हागे। दूसरा को तग कर के भी वे छीना झपटी करत हागे और अपना प्राप्य पा लत होंगे

'माँगें पत पावत पचारि पातकी प्रचड
काल की करालता भले को होत पोच है।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८१)

'सीदत साधु, साधुता सोचति, खल विलसत हुलसति खलइ है
—विनयपत्रिका

एक कहावत के द्वारा भी तुलसी ने इसी बात को स्पष्ट किया है। कहत हैं कि दीपावली की रात को दीपा की माला तो घी पीती है परन्तु प्रातकाल हात ही बेचारे सूप खटखटाये जाते है। कहन का तात्पय यह है कि घी-दूध तो दुष्टा क हाथ पड जाया करत हैं और सूधे बिना किसी कारण के व्यथ म ही पीटे जाया करत हैं और उन्हे खाने के लिए भी उचित भोजन नही मिलन पाता—

'फल फूल फल खल सीद साधु पल पल
खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १७१

देखा जाय तो यह चित्रण परम्परागत ही है क्योंकि प्राय हर काल म एसा होता आया है। कलिकाल म साधुता पर अधिक अत्याचार हुआ है। इसीलिए तुलसी ने चित्रण किया है।

समाज म पापियो की सेना भी दिना दिन बढती जा रही थी। वे पाप की कमाई को खाने म ही अपनी भलाई समझते थे। राहगीरा को वे लूटते थे और ब्राह्मणा को मार कर उनसे भी धन लेकर अपना भडार भरते थे। तुलसी ने ऐसे लोगा को साप कह कर पुकारा है और कहा है कि ये सब के सब मरेंगे—बुरी तरह मरेंगे—कुत्ते की मौत मरेंगे। जिस प्रकार कि दीपावली पर सफाई हाने स और दीपका के द्वारा वातावरण के जगमग होने से सप चले जात हैं उसी प्रकार य पापी भी नष्ट हो जायेंगे और इनके नष्ट होने म बहुत समय भी नही लगेगा—

मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक क धन लीयो
सकर कोप सा पाप का दाम परिच्छित जाहिगा जारि क हीयो
कासी म कटक जेत भये तग पाइ अयाद क आपनो कीयो
आजु कि कालि परा कि नरा जड जाहिंग चाटि दिवारी को दीयो।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १७६)

निश्चित ही इस पद से राहजनी का सकेत मिलता है तथा महासुर ...

सज्जनों व साधु पुरुषों का प्रतीक है जो कि अकारण ही उनके शिकार बना करते थे।

समाज में भिखमंगों की संख्या भी बढ़ गई थी। सुजाति और कुजाति की भावना को छोड़कर बहुत से लोग इस पेशे को करने लगे थे—

'नहिं ताप विचार न सीतलता
सब जाति कुजाति भय मंगता।''—(मानस)

दिन दिन समाज में दुःख, दुष्काल, दारिद्र दुरित (पाप) का साम्राज्य बढ़ता जा रहा था, उनका बोलबाला हो रहा था तथा सुख का संकोच होता जा रहा था—

''दिन दिन दूनो देखि दारिदु दुकालु दुखु
दुरितु दुराजु सुखु सुकृत सकोच है।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८१)

तुलसी ने अपने जीवन-काल में दो बादशाहों का शासनकाल देखा था। एक अकबर का और दूसरे जहांगीर का। यह प्रसिद्ध है कि जहांगीर के राज्य काल में कई बार दुर्भिक्ष अकाल पड़े थे तथा महामारी (प्लेग) भी फैली थी जिसने अनेकों प्राणियों के प्राण लिए थे तथा गाँव के गाँव साफ कर दिए थे। यह प्लेग प्रायः सारे ही हिन्दुस्तान में फैली थी और जनता इसके भीषण प्रकोप से प्रपीडित हुई थी। यह महामारी चार छह साल के लिए ही नहीं आई थी, अपितु एक विस्तृतकाल—बीस साल तक अपना अखाड़ा ताण्डव करती रही थी। कवितावली में जो बीसी शब्द आया है, वह इसी बात का बोधक है। यही बीसी रुद्र बीसी (रुद्र विंशति) के नाम से मशहूर है। रुद्र बीसी का समय ज्योतिष के अनुसार संवत् १६६५ से लेकर संवत् १६८५ तक था जो कि ईसवी सन् के अनुसार सन् १६१२ से लेकर १६३२ तक था। जहांगीर का राज्यकाल भी सन् १६०५ से १६२७ तक था। इस महामारी से कहते हैं कि पहले पंजाब बहुत दुखी हुआ था तथा बाद में यही रोग दिल्ली आदि महानगरियों से होता हुआ बाबा विश्वनाथ की वाराणसी में भी तहलका मचाने पहुंचा था, जिसका उल्लेख तुलसी ने इस प्रकार किया है—

''बीसी विस्वनाथ की विसाद बड़ो बारानसी
बूझिए न ऐसी गति संकर सहर की।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १७०)

इसके अतिरिक्त मीन की सनीचरी का भी उल्लेख तुलसी ने किया है। मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति भी ज्योतिष के अनुसार महाविनाश की सूचक है। इसमें न तो प्रजा ही सुखी रह सकती है और न राज्याधीश ही अपने को सुरक्षित रख सकता है। यह मीन की सनीचरी भी इसी महामारी के समय में पड़ी थी। तुलसी जी कहते हैं कि जिस तरह कोढ़ में खाज का हो जाना विपत्ति को द्विगुणित कर देता है उसी प्रकार कलिकाल में मीन की सनीचरी भी विपत्तियों को बढ़ाने वाली है।

एक तौ कराल कलिकाल सूल मूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८

इस महामारी म काशी की जो दुदशा हुई थी और उसका जो कुपरिणाम निकला था उस को 'कवितावली' म तुलसी न हृदय विदारक रूप म चित्रित किया है तथा उसके शमन के लिए भगवान् भूतनाथ, भगवती पार्वती, आराध्य राम और सताप हरणकर्ता हनुमान स बहुत ही अनुनय विनय किया है ताकि काशीवासी कलि रूप किरात की करामात स बच जायें। वे भवानीनाथ स प्राथना करते हैं कि हे प्रभो! इस काशी के लोग शकर क समान हैं नारियाँ गिरिजा के समान हैं ऐसा वेदा ने कहा है तथा आपको भी यहा के लोग श्री गणेश स प्यारे हैं अत आप इन लोगा की रक्षा कीजिए क्योंकि कलिरूपी किरात आपकी पुरी रूपी कल्पलता को निष्ठुर होकर वह रहा है—

> गौरीनाथ, भोरानाथ, भवत भवानीनाथ!
> विश्वनाथपुरी फिरी आन कलिकाल की
> सकर से नर गिरिजा-सी नारी कासी बासी
> वेद कही ससो सही सेखर कृपाल की
> छमुख गनेस तें महेस के पियारे लाग
> बिकल बिलाकियत नगरी बेहाल की
> पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात-कलि
> निठुर निहारिये उघारि दीठि भाल की।'
>
> —(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १६६)

पार्वती से प्राथना करत हुए तुलसी कहते है कि हे जगदम्बे! चाहे यहा के लोग अवगुणा की खान है परन्तु है तो तरे दास ही, अत उनको अपना दास समझकर उनकी रक्षा कर। वे दरिद्रता स दुखी होत जा रहे हैं ब्राह्मण भिखारी और कायर होते जा रह हैं तथा काम क्रोध लोभ मोहादि कलि-मला न उन्हें घेर लिया है। अत हे महिमामयी! एक बार तो तू यह कह ही दे कि कासी वासी मेरे दास हैं—

> निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर
> नारिऊ अनेरे जगदम्ब! चेरी चेरे हैं
> दारिद्र दुखारी देवि भूसुर भिखारी भीरु
> लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं
> लाकरीति राखीराम साखि बामदेव जानि
> जन की बिनती मानि मातु! कहि मेरे हैं
> महामारी महमानि! महिमा की खानि मोद—
> मगल की रासि दास कासीवासी तेरे हैं।
>
> —(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १७४)

भगवान् राम और कपिराज हनुमान स भी तुलसी न प्राथना की है। उस प्राथना म रूपक का सहारा लकर तुलसी न जो परिस्थिति परिज्ञान कराया है वह अत्यन्त ही हृदयद्रावक है। वे कहते हैं कि शकर शहर रूपी सरोवर म नर-नारि रूपी

जलचर विकल हो रहे हैं। वे महामारी से उसी प्रकार दुखी हो रह हैं, जिस प्रकार माजा नामक रोग से जलचर दुखी हो जात हैं। बचारे उछलत हैं तरत हैं घबडाकर मर जात हैं। सारा जल थल ही जमे मृत्युमय बन गया है। देवता दयालु नहीं हैं, राजा लोग कृपालु नहीं हैं और नित्य प्रति अनीति बढती जा रही है। जब एसी परिस्थिति है ता हे रघुराज! रक्षा कीजिए हे हनुमान! आप ही रक्षा कीजिए क्योकि जहा पर राम की बात बिगडी वहा पर आपने ही उसे समाल लिया—

सकर सहर सर नरनारि बारिचर।'
बिकल सकल, महामारी माजा मई है
उछरत उतरात हहरात मरिजात
भमारि भगात जल थल मीचु मई है
दव न दयान, महिपाल न कृपालचित
बारानसी बाढति अनीति नित नई है
पाहि रघुराज! पाहि कपिराज रामदूत!
राम हू की बिगरी तुम्ही सुधारि लइ है।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १७६)

(२) धार्मिक परिस्थितियाँ

धार्मिक स्थिति भी अस्त व्यस्त और डावाडोल थी। नियम-बधना की कोई चिन्ता नही करता था। मर्यादायें मग करन क लिए लाग कटिबद्ध थे। वे किसी प्रकार भी वण और धम को मानने के लिए तैयार न थ। तुलसी जस मर्यादावादी कवि न इन सभी स्थितिया को दखा और कडी स कडी आलोचना की। वण श्रम धम के हिमायती तुलसी ने उसके प्रति उपक्षा और उदासीनता दिखाए जाने पर जगह जगह भारी क्षोभ प्रकट किया है। व इस प्रकार की अधार्मिक स्थिति का सहन करन वाले भी नहीं थ क्योंकि उनकी दृष्टि म ऐसा अधम साक्षात् धाखा और प्रवचना ही था। कवि मलग्रसित वण आश्रम अवस्था का चित्र इस प्रकार उपस्थित है।

आश्रम-बरन कलि बिवस बिकल भए
निज निज मरजाद माहरी सी डार दी।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १८३)

मर्यादा की गठरी उतारी फेंकन का यहा स्पष्ट रूप स सकत है। तुलसी कहत है कि वर्णाश्रम धम के चले जान म अधम के आसन जमान मे सवत्र ही भागदौड मच गइ है। कुवासना न धम उपासना और ज्ञान को नष्ट कर दिया है और कपटी वेश तथा वराग्य के द्वारा ससार बुरी तरह मे छला जा रहा है—

बरन धरमु गया आश्रम निवासु तज्यो
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है
करमु उपासना कुबासनाँ बिनास्यो ग्यानु
बचन बिराग बष जगतु हरा-सा है।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८४)

कलिकाल ने धर्मों को ग्रसित कर लिया है तथा जप, तप और वैराग्य बेचारे अपनी जान बचाकर भाग जाने की राह देख रहे हैं—

"धम सबै कलि काल ग्रसे
जप जोग विराग ल जीव पराने।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १०५)

वण आश्रम धम तो गया ही साथ ही लोगो का आस्था भी अस्थिर हो गइ। वे वेदा पुराणो आदि आप ग्रथो म विश्वास भी खो बठे और उनकी नास्तिक बुद्धि उनका भी विरोध करने लगी। उनको वेद पुरान मार्ग असत्य प्रतीत होने लगा और उनका पठन पाठन करना तो दूर रहा वे उनम छिद्रान्वेषण भी करने लगे—

वेद पुरान विहाइ सुपथु कुमारग कोटि कुचाति चली है
— — —
वण विभाग न आश्रम धम दुनी दुख दास दरिद्र दली है
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८५)

धम म आचार विचार का भी स्थान महत्वपूर्ण है परन्तु जब धम-कम ही लुप्त हो गया तो यह भी निश्चित है कि आचार विचार भी लुप्त हो जायेगा। तुलसी कहते हैं कि कलिकाल ने आचार विचार को हर लिया है और अज्ञानियो तथा अविवेकियो का कुछ भी नही सूझता। व राजहसो के बालको को धक्का देकर बाहर निकाल देते है और उनके स्थान पर उल्लुओ को पालते है। स्वच्छ चावलो को बटोर कर तो आग लगा देते ह और फिर बजर भूमि म अपन खाने के लिए कण ढूढते हैं। उन्ह अपन ज्ञान और गुणो का अभिमान तो बहुत है परन्तु धान आदि के कूटने म प्रयुक्त होने वाले लकडी क लट्ठे (धनकुटा) के लिए वे कल्पवृक्ष तक को काट डालते हैं। कहने का तात्पय यही है कि उनम उचित अनुचित जानने की बुद्धि पूर्णतया नष्ट हो गई है जिसके कारण वे ऐसा विपरीत काय कर बठते हैं—

राजमराल के बालक पेलिक पालत लालत खूसर का
सुचि सुदर सालि सकेलि सुवारि क बीज बटोरत ऊसर का
गुन ज्ञान गुमान अभेरि बडो कलपद्रुम काटत मूसल को
कलिकाल विचार अचार हरो नहिं सूझ कछू धमधूसर को।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १०३)

(३) आर्थिक परिस्थितिया

सामाजिक परिस्थितियो का विवेचन करते समय यह बताया गया है कि समाज दुर्भिक्ष और महामारी जस महारोगो का मारा हुआ था। दारिद्र का दावानल अपनी कराल लपटें फलाकर समाज को लीलने क लिए लालायित था। ऐसे समय म यदि लोगो की जीविका भार न हो तो आश्चय ही क्या। तुलसी न एसी दशा का चित्रण करते हुए कहा है कि दारिद्र रूपी दशानन (रावण) क द्वारा यह ससार विदलित किया जा रहा है। किसान खेती नहा कर पाते भिखारी को भीख नही मिलती बनिये का

व्यापार के लिए सुविधा प्राप्त नहीं है, नौकरों को नौकरी नहीं मिलती। ऐसी परिस्थिति में वे अपना पेट पालने की सोचते हैं परन्तु सोचना व्यर्थ ही रहता है इसलिए आपस में कहते हैं कि अब क्या करें तथा कहाँ जायें आजीविका कमाने के लिए, जिसमें कि दरिद्रता के द्वारा न सताये जायें —

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी
वेद हूँ पुरान कही, लोक हूँ बिलोकियत
साँकरे सब पै राम रावरे कृपा करी
दारिद-दसानन दबाई दुनी दीनबंधु
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी।''

—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद ९७)

पद में आया हुआ यह वाक्य कहाँ जाई का करी अकेला ही लोगों की परवशता निर्धनता असहायता व्यवसायहीनता और दीनता को प्रकट करने के लिए पूर्णतः सक्षम है। कातरता और विह्वलता तो जैसे टपकी पड़ रही है। दारिद्र को दशानन का रूप देकर तो भयानकता की भी सृष्टि कवि ने कर दी है क्योंकि जिस प्रकार रावण के पराक्रम से, उसके पाप से संसार भयभीत हो गया था, उसी प्रकार कलिकाल में दारिद्र ने भी सब को भयभीत बना दिया है। देखा जाय तो दारिद्र एक प्रकार से कलियुगी रावण है।

जब समाज में रहने वाले व्यक्तियों को भोजन नहीं मिलता उन्हें उदरपूर्ति के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं मिलती उनकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं उन्हें रोटी के लिए मुहताज रहना पड़ता है दोनों समय उन्हें फाके काटने पड़ते हैं तो वे अधम और कुकर्म सब कुछ करने लगते हैं या कहना चाहिए कि वे इन सब को करने के लिए बाध्य हो जाते हैं विवश हो जाते हैं। पेट बहुत ही बलवान है, जिस पर आज तक कोई विजय प्राप्त नहीं कर सका और न इसको कोई कभी हरा सकेगा। अगर यह पेट न हो तो कोई भी दौड़ धूप न करे और निश्चिन्त होकर आनन्द का जीवन व्यतीत करे परन्तु यह तो ऐसा कुआ है कि कभी भरता नहीं। सदैव खाली ही बना रहता है और भरने के लिए कुछ न कुछ माँगा करता है। इस पेट के लिए लोग पर्वतों पर चढ़ते हैं, वन वन घूमते हैं भीख माँगते हैं नौकरी करते हैं चोरी करते हैं कला बाजी सीखते और दिखाते हैं धर्म बेचते हैं। इसी के लिए सतीत्व बेचा जाता है, बेटी बेची जाती है पुत्र बेचा जाता है और इसकी पूर्ति की जाती है। जघन्य से जघन्य काम भी इसी पेट के लिए किया जाता है। तुलसी ने कितनी मार्मिकता के साथ इसी को इस प्रकार दिखलाने का सफल प्रयत्न किया है—

किसबी किसान कुल बनिक, भिखारी भाट,
चाकर चपलनट चोर, चार चेटकी

पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि
अटत गहन गन अहन अखेटकी
ऊँचे नीच करम धरम अधरम करि
पेट को ही पचत, बचत बेटा बेटकी
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद ९६)

निश्चित ही पेट की आग (जठराग्नि) बड़वाग्नि से बढ़ कर है जो कि कभी शांत होती ही नहीं। दावाग्नि (जंगल की अग्नि) भी बुझ जाती है अतल अपार समुद्र की आग (बड़वाग्नि) भी बुझ सकती है परन्तु यह जठराग्नि ऐसी असाधारण अग्नि है कि इसका शमन करना भी सम्भव नहीं है। पेट को ही पचत बचत बेटा बेटकी की नौबत तभी आती है जबकि मनुष्य के पास कुछ नहीं रह जाता। मजबूरी में ही ऐसा काम होता है नहीं तो अपने प्राण प्यारों को कौन बेचता है। तुलसी ने लोगों में जिनकी दयनीयता की स्थिति अवश्य ही देखी होगी नहीं तो इतना मार्मिक कैसे लिख सकते थे। तुलसी ने दो पदों में वह स्थिति चित्रित करके रख दी है जो बहुत से पदों में भी चित्रित नहीं हो सकती।

(४) साम्प्रदायिक परिस्थितियाँ

तुलसी के काल में सम्प्रदायवाद का भी विष फैल रहा था। धार्मिक क्षेत्र में साहित्यिक क्षेत्र में लोग मनमानी कर रहे थे और अनोखे पंथों का प्रचलन कर रहे थे। कुछ पंथ ऐसे भी थे जो कि तुलसी के पूर्ववर्ती कवियों के द्वारा प्रचलित किए गए थे और जिनका प्रभाव जनता पर अभी भी विद्यमान था। गोरखपंथी योगियों का योग तथा कबीरदास जैसे निरगुनियों का निर्गुण पंथ ऐसे ही थे। तुलसी ने इन लोगों की भर्त्सना की है और उन्हें वामाचारी, कपटाचारी, दंभी और प्रपंची कहा है।

तजि स्तुति पंथ वाम पथ चलहीं
वंचक बिरंचि बेष जग छलहीं

— — —

दंभिन निज मत कल्पि कर प्रकट किए बहु पंथ।

अब यहाँ पर इस पंथों की थोड़ी चर्चा की जाती है जिससे उनके स्वरूप और सिद्धान्त का विश्लेषण हो सके और प्रवृत्ति का पता लग सके। इसके लिए सबसे पहले दोहावली का वह दोहा उद्धृत किया जाता है जिसमें उनका बीज निहित है—

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान।

इसमें साखी सबदी दोहरा कबीर पंथियों के लिए कहनी (कथनी) उपखान (उपाख्यान या आख्यान) जायसी आदि प्रेममार्गियों के लिए कहे हैं।

पहले कबीर को लिया जाता है। कबीर का ब्रह्म निर्गुण और निराकार ब्रह्म

है, वह निरजन है तथा अखिल ब्रह्माण्ड मे व्याप्त है। उसकी महिमा को कोइ नही जान सकता वह अगम्य और अरूप है। उस अविज्ञेय की गति समझ नही पडती। ऐसे निगु ण के जाप के लिए कबीर न उपदेश दिया है—

निरगुण राम निरगुण राम, जपहु रे भाई
अविगत की गति लखी न जाई।

ऐसा निगु ण ब्रह्म अविनासी है न उसका जन्म होता है और न मरण, वह अजर अमर है। तुलसी ने ऐसे निगु ण निराकार को अग्राह्य और अव्यावहारिक बतलाया है और निरगुनिए सन्तो को भी फटकारा है। वे कहते हैं कि अन्तर्यामी से बहिर्यामी बडा है क्योकि वह हर प्रकार स हमारी सहायता करता है। जो इन्द्रिया से अगोचर है वह किस प्रकार हमारा विषय (इन्द्रिय विषय) हो सकता है और किस प्रकार हमारी आराधना का कारण बन सकता है। इसी बात को एक उदाहरण देकर बतलाते है कि जिस प्रकार हाल की ब्याही गाय अपन बच्चे का बोल सुनकर स्तनो म दूध उतारती हुई भागी आती है बच्चे को दूध पिलाने के लिए उसी प्रकार सगुण साकार रूप भगवान् भी आर्त्त की पुकार सुनकर दौडे दौड आते हैं और रक्षा करते हैं। प्रह्लाद का बचाने क लिए प्रभु पत्थर से ही तो निकले थे न कि अन्तर से। उदाहरण इस प्रकार है—

अन्तर जामिहु तें बडे बाहिर जामी हैं रामु जे नाम लिए तें
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यो बालक बालनि कान किए त
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात किए तें
पज परें प्रह्लादहु को, प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद १२९)

निगु ण-मत म मूर्ति पूजा का भी विरोध बहुत मिलता है। उसम ऐसी पूजा ढोग समझी जाती है तथा ब्राह्याडम्बर मानकर हेय दृष्टि से देखी जाती है। पाहन पूजा का उपहास करत हुए कबीर ने इस तरह अपन विचार व्यक्त किए हैं—

'दुनिया एसी बावरी पाथर पूजन जाय
घर की चकिया कोई न पूजे, जाही को पीसा खाय—(१)
पाथर पूज हरि मिल तो मैं पूजू पहार
यात तो चाकी भली पीस खाय ससार'—(२)

किन्तु पाहन पूजा या मूर्त्तिपूजा को तक के साथ उपस्थित करके तुलसी न जो उसका महत्व प्रतिपादन एव समर्थन किया है वह तो देखते ही बनता है। तुलसी कहते हैं कि जब प्रह्लाद के पिता ने तलवार निकालकर प्रह्लाद स पूछा कि बोल तेरा राम कहा है तो उसने साफ कह दिया कि सर्वत्र है। क्या इस खम्भे म भी है जिसस कि तू बधा है तो प्रह्लाद ने कहा—हा इस खम्भे म भी है। प्रह्लाद का हा कहना ही था कि नरसिंह खम्भा से निकल पडे और फिर हिरण्यकश्यप का विदीर्ण करके प्रह्लाद क कहन पर शात हुए—

काढि कृपान कृपा न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे
राम कहाँ ? सब ठाऊँ हैं खम म ? 'हाँ' सुन हाक नकेहरि जागे

भरी बिचारि मन बिसराम, मह प्रह्लादहिं के अनुराग
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लाग।
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद १०८)

मूर्ति-पूजा परन्तु तब से नहीं चली, यह तो बहुत पहले से चली आ रही है। इस प्रथा का प्रचार उत्तम विनय प्रीति प्रदर्शन के रूप में ही लेना चाहिए।

कबीर ने जिस राम की चर्चा की है वह निर्गुण है तथा उसको योगी ध्यान लगाकर ही पा सकता है क्योंकि रमन्ते योगिनः यस्मिन् स राम ही कबीर का प्रतिपाद्य राम है। दशरथ सुत राम की उन्होंने पूजा नहीं की है तथा जो राम को दशरथ सुत मानते हैं उनका ममर्म नहीं बतलाया है—

'दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना
राम नाम का मरम न जाना।'

इसके विपरीत भी तुलसी ने बहुत कुछ कहा है तथा निरगुनिए लोगों को आड़े हाथों लिया है। वे दशरथ के दुलार को ही अपना परम आराध्य मानते हैं और उन्हीं के हाथों बिकना पसन्द करते हैं क्योंकि वे ही सच्चे विमोचक हैं उद्धारक हैं—

'का करि सोच मरै तुलसी, हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने।'

उसी राम का नाम इस कलिकाल में कामनाओं की पूर्ति करने वाला है यही स्वार्थ तथा परमार्थ का कल्पवृक्ष है किन्तु कुचाली उसी को बिसारते हैं—

स्वारथ को परमारथ को कलि, कामद राम को नाम बिसारे

— — —

स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नामु प्रतापु बली है।

सूफियों के प्रति विरोध भावना तुलसी ने व्यक्त नहीं किया है क्योंकि सूफीमत में खण्डन की या तोड़ फोड़ की उतनी प्रवृत्ति नहीं थी जितनी कि कबीर पंथ में। यह मत एक प्रेममत था जिसने किसी के प्रति विद्वेष नहीं दिखलाया और न निंदा का मार्ग ही अपनाया। सूफी कवि थे तो मुसलमान परन्तु उन्होंने हिंदू घरों की कथाओं को लेकर जो आख्यान लिखे उनसे यह प्रकट होता है कि हिंदू मुसलिम एकता की उनके अन्दर कितनी प्रबल प्रवृत्ति थी।

गोरखनाथ के योग हठयोग को भी तुलसी ने अपने व्यंग्य बाणों का शिकार बनाया है क्योंकि इसमें वास विधानों का बहिष्कार किया गया है तथा पिंड के अन्दर ही ब्रह्माण्ड माना गया है। इस सम्प्रदाय में पतंजलि के योग सिद्धान्त को ही अपनाया गया है और योगश्चित्तवृत्तिनिरोध अर्थात् योग को चित्त वृत्तियों का निरोध या निग्रह माना गया है तथा ईश्वर को समाधि में प्राप्त करने पर बल दिया गया है। योग के यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा और समाधि—ये आठ सोपान माने गए हैं जिन पर चलकर साधक ईश्वर प्राप्ति कर सकता है। इस योग का प्रभाव कबीर पर भी बहुत है और कहीं कहीं तो कबीर में यौगिक क्रिया कलापों की भी स्पष्ट अभिव्यक्ति मिल जाती है। सगुणोपासक कवियों में इस योग का विरोध ही नहीं मिलता अपितु एक प्रकार की खीझ और खिल्ली की भावना भी मिलती है। सूर का

सारा का सारा 'भ्रमरगीत गोपिया क व्यग्य वचना से विदग्ध है, जिसमे कि योग के मूलभूत सिद्धाता की वदुतापूण ग्रालाचना उन्हाने की है।

जाग साधना करने वालों के लिए एकमात्र स्थान ईशपुरी को उन्हाने वतलाया ह—

'गाकुल सव गोपाल उपासी
जोए ग्रग साधत जे ऊधो त सव वसत ईसपुर वासी।''

योग भक्ति विराधी मन ह्। तुलमी जो कि भक्ति को परम मानते हैं किस प्रकार उसका विराध देख सकत हैं तभी उन्हाने कहा है कि योग ने लोगा को भक्ति विमुख कर दिया है तथा वेद ग्राना को खल म (केलि म) ही छल कर चौपट कर दिया है—

'गोरख जगायो जोग, भगति भगाया लाग
निगम नियाग त सो, केलि (कलि) ही छको सो है।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८४)

भस्म लगान वा न, जटायें रखने वाले वन वनान वाले, भक्ष्य ग्रभक्ष्य खाने वाल, सिंगी सेली मृगछाला ग्रादि धारण करने वाल ही उस युग म साधु ग्रौर तपस्वी माने जान थ जिनके विषय म तुलसी ने ग्रपन रामचरितमानस म कह ह—

''जाके नख ग्रर जटा बिसाला
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला
ग्रसुभ वेप भूपन धरें भच्छाभच्छ जे खाहि
तइ जोगी तइ सिद्ध नर पूज्य त कलिजुग माहि।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड)

जो श्मशान म जाकर ममान जगाता है वह भी तुलसी के मत स ग्रपना महत्व नष्ट करता है तथा वरवस प्रेत वनन का उपक्रम करता है। इसी प्रकार तुलसी ग्रनेक दवोपसना का त्याज्य समझते है ग्रौर उसकी व्यर्थता व्यक्त करते हैं—

काहे को ग्रनक देव सेवत जाग मसान
खोवत ग्रपान सठ! होत हठि प्रेत रे
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय
जाचत नरेस दस दस के ग्रचत रे।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १६२)

तलसी के विचार मे व गवार हैं जो ग्रपने का वहुत ज्ञानी समझते हैं जिन्हे ग्रपन ज्ञान का गुमान ह। कारा ज्ञान उनकी दृष्टि म कोई मूल्य नहीं रखता। ज्ञानी वही है जा कि ग्रपन ज्ञान का सदुपयोग जानकीनाथ को ही जानने म करता ह। ज्ञान की साथकता ता तभी है—

जानपनी को गुमान वडा तुलसी के विचार गवार महा है
जानकी जीवनु जान न जान्या तौ जान कहावत जान्यो कहा ह।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ३६)

नकली वेप धरा को तुलसी न विप धर की सना दी है जो कि समाज के लोगो को केवल वेप धारण करके ही ठगा करत हैं। जो ग्रपनी देह को पुष्ट वनाते है रस

करे वचन कहते हैं जो लोभ, मोह, काम, क्रोध की निवास भूमि हैं राग राग ईर्ष्या कपट कुटिलता की खान हैं, वे न तो धन और धाम की कामना से मुक्त हैं और न उपासना का रूप ही समझ पाते हैं—

वेष सुबनाइ सुचि वचन कहैं चुवाइ
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की
कोटिक उपाय करि लालि पालिमत देह
मुख कहियत गति राम ही के नाम की
प्रकट उपासना दुराव दुरवासनाहि
मानस निवास भूमि लोभ मोह-काम की
राग रोष ईरिषा कपट कुटिलाई करे
तुलसा स भगत भगति चहैं राम की।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ११६)

(५) राजनतिक परिस्थितियाँ

इस प्रकार की परिस्थितिया का चित्रण कवितावली म बहुत ही कम है। कवल कुछ ही पदा म तत्कालीन राजसमाज का रूप प्रदर्शित किया गया है। तुलसी न रामचरितमानस तथा दोहावली म इनका विशेष चित्रण किया है। राजा प्रजा का क्या सम्बन्ध है राजा को प्रजा के हित के लिए क्या करना चाहिए उसका व्यवहार कसा होना चाहिए राजा के कमचारी कस होन चाहिए आदि अनेक विषय उनम विस्तार से मिल जात हैं। यहा पर ता कवितावली के आधार पर थोडा-सा विवेचन करना अपेक्षित है। उस विवेचन का सार यह है कि उस समय राजा प्रजा का हित चिन्तक नही था। वह अपनी जनता के प्रति भी कृपालु नहा थ। उसका समाज (कमचारी आदि) भी छली था—

कालु कराल नपाल कृपाल न राज समाजु बडो ही छलो है।

भूमि चोरो के भूप हो जान से सद्व्यवहार की आशा करना ही व्यथ था क्योंकि— वद धम दूरि गय, भूमि चोर भूप भये
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की।

राजकाय का तुलसी ने कुपथ्य कहा है जो कि रोग म निवारण क लिए न ता औषध के समान है और न किसी प्रकार की रक्षा म समथ है—

'राजकाजु कुपथु कुसाजु भोग रोग हीके
वद-बुध विद्या पाइ बिबस वल कही।

इस प्रकार के कृपा विहीन महीपाला के लिए तुलसी की यह पक्ति सदव ही स्मरण रखने योग्य है कि जिस नपति के काल म जनता को यातना मिलती है वह अवश्य नरक अधिकारी है।

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नप अवसि नरक अधिकारी।

रचना-काल

तुलसीदास ने अपने दो एक ग्रथो को छोडकर किसी का भी रचना-काल नही दिया है। 'कवितावली' भी ऐसा ही ग्रथ है जिसकी रचना तिथि के विषय म कवि मौन है। अत उसमे आए हुए कतिपय पदो के आधार पर ही 'कवितावली' का रचना काल स्थिर करना पडेगा। उन्ही पदो को लेकर तुलसी-काव्य के ममज्ञो ने भी रचना-काल का निर्णय किया है। यहा पर पदो और मतो पर विचार करके उसका रचना काल निर्धारित जाता है।

तुलसीदास के कथित शिष्य बाबा वेणीमाधव दास का 'गोसाइ चरित' कवितावली के कुछ पदो के रचना काल पर प्रकाश डालने वाला प्रथम ग्रथ है। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' म उनके मत पर विचार करते हुए लिखा है— श्री वेणीमाधव दास ने 'कवितावली' नामक ग्रथ का न तो कही निर्देश ही किया है और न उसकी रचना तिथि ही दी है। उन्होने 'गोसाइचरित' के ३५वें दोहे म कुछ कवित्तो की रचना का सकेत अवश्य दिया है—

सीता वट तर तीन दिन वसि सुकवित्त बनाय
वटि छुडावन विध नप पहुचे कासी जाय।

सीतावट के नीचे इन कवित्तो की रचना का समय विक्रमी सवत् १६२८ और १६३१ के बीच म है। वेणीमाधव दास के अनुसार कवित्तो की रचना 'गीतावली' के बाद और 'मानस' के पूर्व की है। इस कथन से कवितावली के केवल एक अश के ही विषय म पता चलता है। अन्य अशो या घटनाओ के विषय म किसी भी निश्चित परिणाम पर नही पहुचा जा सकता जबकि 'कवितावली' म आई हुई कुछ घटनाएँ तो बहुत ही महत्वपूर्ण और निर्णायक भी है।

'मूलगोसाइ चरित' म दिए गए इस कथन को लेकर हिन्दी के कुछ विद्वानो ने भी विचार व्यक्त किए हैं। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'यह भी निश्चित है कि इस काल के बाद (१६२८ ३१ के बाद) भी कवित्तो की रचना हुई, क्योकि 'कवितावली' म 'मीन की सनीचरी' का वर्णन है जिसका समय स० १६६९ से १६७१ माना गया है। अत 'कवितावली' सम्यक ग्रथ के रूप म न होकर समय समय पर लिखे गए कवित्तो के सग्रह के रूप म है। यदि वेणीमाधव दास का प्रमाण न भी माना जावे तो 'कवितावली' के कुछ कवित्तो का रचना काल स० १६६९ के लगभग तो ठहरता ही है।

डा० श्यामसुन्दर दास भी लिखते है कि 'यदि जिस क्रम से 'कवितावली' के

उत्तरकाण्ड के अन्त में कविता का संग्रह है उससे उसके रचनाकाल का कुछ पता चल सकता है तो यही कि कवितावली का कथा भाग और सीतावट विषयक कवित्त १६२८ और १६३१ के बीच में बनाए गए हैं और नपाद १६६६ के पीछे क्योंकि हनुमान बाहुक की 'गोसाइं चरित' में दी गई तिथि को उन्होंने सत्य मान लिया था। डॉ० श्याम सुन्दर दास ने अपनी ओर से कुछ न कहकर गोसाइंचरित पर ही विश्वास करके ऊपर का कथन किया है क्योंकि तुलसी का जीवन चरित्र उन्होंने उसी चरित के आधार पर प्रस्तुत किया है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने ग्रंथ 'तुलसी और उनकी कविता' में कविता वली के साथ बाहुक का उल्लेख करके कहा है कि 'इस संग्रह के छन्दों की रचना संवत् १६१० से कम से कम १६१७ तक हुई और यदि क्षेमकरी पक्षी वाला छन्द सर्वथा तुलसी दास के अंतिम दिन का माना जाए तो इसका रचना काल सं० १६८० तक पहुंच जाता है।' त्रिपाठी जी ने अपने वक्तव्य में संवत् १६१० में लिखे गये कविता की ओर जो संकेत किया है वह उनका अपना कोई मत नहीं लगता और न यह संवत् कहीं उल्लिखित मिलता है। वेणीमाधव दास ने जो यह निर्णय दिया है कि कविता की रचना 'गीतावली' के बाद और मानस के पूर्व की है उसी से त्रिपाठी जी ने निष्कर्ष निकाल लिया है क्योंकि मानस का निर्माण काल मानसकार ने संवत् १६३१ दिया है 'संवत सोलह सौ इकतीसा करौ कथा हरिपद धरि सीसा।

इस विवेचन से यह ज्ञात हो जाता है कि मीन की सनीचरी तथा सीतावट विषयक रचित छंद—दोनों कालों में निर्मित छन्दों को लेकर ही विद्वानों ने विशेष रूप से हमारा ध्यान खींचा है बाकी दो कालों—महामारी तथा रुद्रबीसी—में लिखे गये कवित्तों पर उन्होंने विचार ही नहीं किया है। कवितावली में इन दोनों का उल्लेख इन छंदों में किया गया है—

संकर सहर सर नरनारि-बारिचर
बिकल सकल महामारी माजा भई है
उछरत उतरात हहरात मरिजात
भभरि भगात जल थल मीचु मई है।'—(१)
बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ो बारा नसी
बूझिए न ऐसी गति संकर सहर की
कैसे कहै तुलसी वृषासुर के बरदानि
बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहर की।'—(२)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहाँगीर के शासनकाल मे भीषण प्लेग फैली थी जिससे देश के कई भाग तबाह हो गये थे। कहा जाता है कि आगरे में इस प्लेग के कारण १०० मनुष्य प्रतिदिन मरते थे। उनको उठाने वाला कोई भी न था। डर के मारे किसी को किसी के पास जाने की हिम्मत न होती थी। लोग अपने घरों को छोड़कर दूर दूर स्थानों में भाग गये थे। 'तुजुके जहाँगीरी' में इस दर्दनाक दशा की सारी दास्तान वर्णित है जो कि पत्थरों को भी पिघलाने में समर्थ है।

ज्योतिष इस बात का साक्षी है कि रुद्रबीसी संवत् १६६५ से लेकर १६८५ तक रही थी जिसमें कि उक्त महामारी का प्रकोप था। यह काल सब ओर से आपत्तियों का काल था। एक के बाद एक दुर्गति का सिलसिला लग गया था। मीन की सनीचरी ऐसी ही दुर्गतियों में से एक दुर्गति थी—

'एक तौ कराल कलिकाल सूल मूल
तामें कोढ़ में की खाजु-सी सनचरी है मीन की।"

इस स्थिति का अवलोकन कर लेने पर इस बात को कहने में जरा भी संदेह नहीं रह जाता कि उत्तरकाण्ड के पचासों पद ऐसी ही परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक प्रकाश डालते हैं और यह कथन कराने के लिए बाध्य कर देते हैं कि उत्तरकाण्ड के ऐसे पदों की रचना तुलसी की मृत्यु के पास आ जाने तक भी हुई है।

अधिकांश विद्वानों ने संवत् १६२८-१६७१ तक के काल में पदों का निर्माण माना है, परन्तु निश्चित मत है कि संवत् १६८० तक के पद भी इस ग्रंथ में संग्रहीत हैं चाहे हम क्षेमकरी पक्षी विषयक पद को तुलसी के अंतिम साँस लेने के समय का मानें या न मानें—

पंखि सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचन छेमकरी हैं।

ये सब के सब मत, ये सब के सब कथन और ये सब के सब निर्णय तो केवल उत्तरकाण्ड को लेकर ही सामने आए हैं। बाकी छह काण्डों की रचना कब हुई इस बारे में तो किसी ने एक शब्द तक नहीं कहा है। फिर समग्र ग्रंथ कवितावली के निर्माण काल का निर्धारण कैसे किया जाय, यह समस्या भी आकर खड़ी हो जाती है। इस समस्या का समाधान किसी के भी पास नहीं है और हार मानकर अंत में यही कहना पड़ता है कि कवितावली किसी एक काल की तो रचना कही नहीं जा सकती वह अवश्य ही लम्बे काल में हुई होगी। ऐसा अनुमान है कि प्रारम्भ के काण्डों के पद उन्होंने अपने अन्य ग्रंथों के लेखन के साथ ही साथ बनाये होंगे। ऐसा देखा जाता है कि लिखते लिखते कभी मस्तिष्क में कोई अच्छा भाव टकरा जाता है और जब उसे मूर्त रूप दिया जाता है तब भी वह सुंदर रूप में ढल जाता है। ऐसे ही सुंदर साँचे में ढले हुए कवित्त इस ग्रंथ के प्रारम्भिक छह काण्डों के कवित्त जान पड़ते हैं। कवि ने अलग से उनको स्टाक के रूप में रख लिया होगा और कवितावली नामक ग्रंथ बनाते समय उन्हें उसमें सम्मिलित कर लिया होगा। रही उत्तरकाण्ड के पदों की बात सो वे सब के सब तुलसी के वृद्धावस्था के ही पद लगते हैं। उनमें कवि की निश्छल आत्माभिव्यक्ति है और भक्त का सहज समर्पण शक्ति है तथा समाज की दयनीय दशा-उक्ति है।

अब कवितावली अंतिम रचना है या नहीं, इस पर भी विचार कर लेना असमीचीन न होगा। यह तो सिद्ध ही है कि कवितावली के उत्तरकाण्ड के अंतिम भाग में अपनी बाहुवेदना के विषय में कवि ने संकेत किया है और उसके निवारणार्थ हनुमान आदि से प्रार्थना भी की है। हनुमानबाहुक भी एक ऐसा ही ग्रंथ है जिसमें कवि ने स्वतन्त्र होकर अपनी वेदना के विषय में लिखा है और ऐसा लिखा है जैसा

कि एक बार गोद में श्रमित लिपटा है। एक एक दल में कवि की पराकाष्ठा कल्पना दीखता है और लगता हाय हाय करके चिल्लाता है।

कुछ लोग 'बाहुक' और 'कवितावली' को अलग मानते हैं और कोई उस 'बाहुक' को कवितावली का ही एक अंग मानते हैं। चाहे जो कुछ भी हो, दोनों तो निश्चित कहा जा सकता है कि कवितावली का उत्तरकाण्ड तथा 'बाहुक' गोस्वामी जी की अन्तिम रचनाएँ हैं। वे प्रामाणिक हैं। बाबा बेणीमाधव दास ने 'बाहुक' की रचना तिथि संवत् १६६९ मानी है जिस पर विचार करते हुए डा० रामकुमार वर्मा कहते हैं— 'कवि की प्रौढ़ता इत्यादि अनुमान भी यही होता है कि 'बाहुक' बना तुलसीदास के जीवन के परवर्ती काल की है। यदि इसी पद्धति से हम तुलसीदास की मृत्यु मानें तब तो यह तुलसीदास की अन्तिम रचना है और इसका रचनाकाल संवत् १६८० है। यदि उपर्युक्त घटना नहीं भी न हो तो यह रचना संवत् १६६९ के लगभग की तो मानी जानी ही चाहिए।'

इन दोनों को अन्तिम रचना मानने में बाधा सी पड़ती है बेणीमाधव दास द्वारा लिखित इस पंक्ति ने पहुँचाई है जिसका निराकरण करना आवश्यक है—

'बाहु पीर व्याकुल भये बाहुक रच सुधीर
पुनि विराग संदीपनी रामाज्ञा सकुनीर।

इसमें कहा गया है कि बाहुक की रचना के बाद तुलसी ने 'वैराग्यसंदीपिनी' और रामाज्ञाप्रश्नावली की रचना की। बेणीमाधव दास के इस कथन का तुलसी साहित्य के ममज्ञों द्वारा खंडन किया गया है और यह बताया गया है कि ये दोनों बाद की रचनाएँ न होकर 'बाहुक' से पूर्व की हैं। अब एक ग्रंथ को लेकर उसकी निर्माण तिथि पर विचार किया जाता है।

बेणीमाधव दास ने वैराग्यसंदीपिनी की रचना तिथि सं० १६६९ मानी है और ऊपर वाली पंक्ति भी लिखी है परन्तु डा० श्यामसुन्दर दास और डा० पीताम्बर दास बड़थ्वाल दोनों ही इसको संवत् १६४० के पूर्व की रचना मानते हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने उनके कथन को अपने इतिहास में या दिखाया है—इसमें तो संदेह नहीं कि वैराग्यसंदीपिनी दोहावलि के संग्रहीत होने से पहले बनी क्योंकि वैराग्यसंदीपिनी के कई दोहे दोहावली में संग्रहीत हैं। इस बात की आशंका नहीं की जा सकती है कि दोहावली ही से वैराग्यसंदीपिनी में दोहे लिए गए हों क्योंकि वैराग्यसंदीपिनी एक स्वतन्त्र ग्रंथ है और दोहावली स्पष्ट ही संग्रह ग्रंथ। दोहावली का संग्रह सं० १६४० में हुआ था। इससे यह ग्रंथ सं० १६४० से पहले ही बन चुका होगा।

'रामाज्ञा' की रचना तिथि भी बेणीमाधव दास ने सं० १६६९ ही दी है। श्री छक्कन लाल ने इस सं० १६६५ में स्वयं गुसाईं जी के हस्तकमल द्वारा लिखित बताया है परन्तु पं० सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि संवत् १६६५ रामाज्ञा की रचना तिथि न होकर प्रतिलिपि तिथि ही मानना उचित है क्योंकि तुलसीदास अपने ग्रंथ की रचना तिथि प्रारम्भ में ही लिख देते हैं। उदाहरण के लिए 'रामचरितमानस

और 'पावतीमगल' ग्रंथ हैं, जिनके प्रारम्भ ही म रचना तिथि दी गई है। इसके अनुसार रामाना' की रचना तिथि स० १६६५ के पूर्व की ही ठहरती है।

विद्वाना के विचार जान लेन के पश्चात् यह निणय करना सरल हो जाता है कि ये दोना ही रचनाए स० १६६६ के बहुत पूव की हैं और वणीमाधव दास की दी गई निथि को गलत सिद्ध करती है। अत अब यह मानन म कोई सदेह नहीं रह जाना कि 'कविनावली' का केवल 'उत्तरकाण्ड' और हनुमानवाहुक' मिलकर तुलसी की अंतिम रचना है।

प्रतिपाद्य

'कवितावली' तुलसी के अन्य ग्रंथों की भाँति राम कथा का वर्णन करने वाली एक अनुपम कृति है। इसमें विषय का विभाजन भी अन्य ग्रंथों की तरह काण्डों में हो किया है और काण्ड भी सात ही रखे गए हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। परन्तु सब काण्डों के होते हुए भी कथा की वह निरन्तरता और गतिशीलता इसमें नहीं है जो कि 'रामचरितमानस' में देखने को मिलती है। यह कथन केवल 'कवितावली' के साथ ही चरितार्थ होता हो ऐसी बात नहीं है। अन्य ग्रंथों में तुलसी ने यद्यपि राम की गाथा को गाया है, काण्डों में विभाजन भी किया है परन्तु धारावाहिकता वहाँ पर भी देखने को नहीं मिलती। 'गीतावली' आदि में यही बात है। इसी का अनुभव करके 'मानस' के एक प्राचीन टीकाकार श्री बैजनाथ जी कूर्मवंशी ने अपनी टीका की भूमिका में कहा है कि 'रामचरितमानस' तुलसी का रोजनामचा है और अन्य ग्रंथ अलग अलग नामों के रूप में खाता हैं जैसे माधुर्य लीला का खाता 'गीतावली', गुणों का खाता 'विनयपत्रिका' शोभा का खाता 'बरवैरामायण'। 'कवितावली' को उन्होंने प्रताप और ऐश्वर्य लीला का खाता माना है। अब यहाँ पर 'कवितावली' में आये हुए विषयों के आधार पर काण्ड क्रमानुसार उसकी समग्र सामग्री पर विचार किया जाता है।

बालकाण्ड में २० पद हैं जिनमें से पहले सात पद बालवर्णन से सम्बन्धित हैं। इनमें राम की तथा अन्य भाइयों की बाल सुलभ चेष्टाओं का निदर्शन मात्र कराया गया है। इसके बाद पद ८ से लेकर १७ तक धनुष यज्ञ में अवनीपतियों का सम्मिलन, राम के द्वारा धनुष-दलन, धनुष के टूटने पर होने वाले कोलाहल, नगर निवासियों द्वारा राम की प्रशंसा, सखियों द्वारा राम के गले में माला डालने के लिए सीताजी को प्रेरित किया जाना और राम सीता का विवाह हो जाना वर्णित है। ज्यों ही राम के गले में जयमाला सीता ने डाली वैसे ही सब ओर जय जयकार का शब्द सुनाई देने लगा। कवि ने उस समय के हर्षातिरेक को यों व्यक्त किया है—

नगर निसान बर बाजे व्योम दुंदुभी
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं
जयति जय तिहु पुर जयमाल रामउर
बरषे सुमन सुर रूरे रूप राचहीं
जनक को पनु जयो सबको भावतो भयो
तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं
सावरो किसोर गोरी सोभा पर तृन तोरी
जोरी जियो जुग जुग जुवती जन जाचहीं।

अंतिम ५ पदा म परगुराम लक्ष्मण सवाद है जिसम परगुराम और लक्ष्मण दोना का व्यग्य विदग्ध वाद विवाद तो है ही साथ ही एक पद मे कइ कथा प्रसगा का उल्लेख भी कर दिया गया है जसे अहल्या उद्धार यन रक्षा के निमित्त राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ भेजा जाना राक्षसा के नाश म उनकी समर्थता । विश्वामित्र ने ही परगुराम को रामादि का परिचय दत हुए इन प्रसगा की चचा की है। वह प्रसगा वाला पद इस प्रकार है—

"मख राखिब के काज राजा मेरे सग दए
दल जातु धान जे जितया विबुधेस के
गौतम की तीय तारी मेटे अघ भूरिमार
लाचन अतिथि भए जनक जनेम के
चड बाहुदड बल कडीस कोदडु खडयो
ब्याही जानकी, जीत नरेस दस देस के
सावरे गोरे सरीर धीर महावीर दोऊ
नाम रामु लखनु कुमार कौसलेम के।

अन्त म परगुराम अपने धनुष बाण राम को सौप कर चले जाते हैं और उनके प्रस्थान के साथ ही बालकाण्ड समाप्त हो जाता है। इस काण्ड म तुलसी ने कथा का व्यतिक्रम भी किया है, क्योकि यहाँ पर परगुराम जी राम के विवाह के बाद आये हैं जबकि 'मानस' म धनुष ताडन के तुरत बाद आते हैं। वहा पर विवाह भी बाद म हुआ है परन्तु यहाँ पर तो विवाह और परगुराम आगमन साथ साथ ही हो रहा है। इस प्रकार बालकाण्ड म केवल चार प्रसगा को ही रखा गया है और पुष्प वाटिका निरीक्षण व राम-सीता का प्रथम परस्परावलोकन आदि प्रसगा को छुआ तक नही गया है। परगुराम-सवाद भी छोटा है जिसम स्वय परगुराम ही बिना किसी परीक्षा के अपने धनुष बाण देकर चल जाते हैं और राम के प्रति तो एक शब्द भी नहा निकालते।

अयोध्याकाण्ड' म कुल २८ पद हैं जिनम स पहले दो पद राम के राजसी, वभव त्याग और अयोध्या त्याग स सम्बन्धित हैं। फिर दो पदा म कौशल्या सुमित्रा का आपसी वार्तालाप है जो थोडा होते हुए भी बडा द्रावक है और कौशल्या की वेदना को व्यक्त करने वाला है। तीसरा प्रसग केवट के पाद प्रक्षालन से सम्बन्धित है जो कि ६ पदा म है और केवट की चरपटी बाता स भरा पडा है। यह प्रसग अपने आप मे बहुत सुदर है और मलाह की माह लने वाली बोली न तो उसम प्राण ही फूक दिए हैं। एक पद उसी को लेकर यहाँ दिया जाता है, जिसम केवट की चातुरता देखी जा सकती है—

पात भरी सहरी सकल सुत बारे-बार
केवट की जाति कछू बद न पढाइहौं
सबु परिवार, मेरो याही लागि राजा जू
हौं दीन वित्तहीन कमैं दूसरी गढ़ाइहौं

गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी
प्रभुसों निषादु ह्वै कै बादु ना बढ़ाइहौं
तुलसी के ईस राम, रावरे सों सांची कहौं
बिना पग धोएँ नाथ ! नाव ना चढ़ाइहौं।'

चौथा प्रसंग वन गमन और वन मार्ग का है जो कि १८ पदों में वर्णित है। इस प्रसंग में करुण और शृंगार की जैसी अभिव्यक्ति हुई है वह कवितावली में अन्यत्र दर्शन को नहीं मिलती। वन मार्ग का प्रसंग तो करुणा का जीता जागता प्रसंग है। राम का हिरन के पीछे दौड़ना भी एक पद में अंकित किया गया है और हास्य के उदाहरण के साथ अयोध्याकाण्ड समाप्त हो जाता है। मुख्य रूप से तो कवि ने दो ही प्रसंग रखे हैं—वन गमन और केवट-वचन। अन्य प्रसंग जैसे—रामराज्याभिषेक की तैयारी, कैकयी की वर-याचना, राम भरत का मिलन, दशरथ प्रयाण तो कवि ने छुए ही नहीं हैं।

अरण्यकाण्ड में केवल १ ही पद है, जिसमें मारीच के पीछे राम का दौड़ना दिखलाया गया है और पंचवटी में अपनी पर्णकुटी में राम, सीता और लक्ष्मण तीनों का ही आनन्दपूर्वक बैठना वर्णित किया गया है। पद है—

'पंचवटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं रामु सुभायँ सुहाए
सोहै प्रिया प्रिय बंधु लसै तुलसी सब अंग घने छबि छाए
देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन ते प्रीतम के मन भाए
हेमकुरंग के संग सरासनु सायकु लै रघुनायकु धाए।

अरण्यकाण्ड के अन्य प्रसंगों—खर दूषण-वध, सीताहरण और शबरी आश्रम-गमन—को छोड़ दिया गया है। पंचवटी निवास का भी उल्लेख मात्र किया गया है। एक पद में किस किस प्रसंग का वर्णन सम्भव था, यह सोचने की बात है। सच तो यह है कि अरण्यकाण्ड में कथा नहीं के बराबर है।

किष्किंधाकाण्ड में भी वही पद है जिसमें हनुमान के समुद्र के उल्लंघन का उल्लेख किया गया है। कथा इसमें भी नहीं के बराबर है। बालि वध और सीता के अनुसंधान के लिए वानरों का प्रस्थान आदि कुछ भी नहीं बतलाया गया है। केवल हनुमान के लंका में पहुंच जाने की कथा का आभास देकर यह काण्ड समाप्त हो जाता है।

सुन्दरकाण्ड में ३२ पद हैं जिनमें से पहले दो पद रावण के अशोक वन के वर्णन से सम्बंधित हैं। सीता जी को हनुमान ने उसी के नीचे बैठा हुआ देखा और उन्हें देखकर वे भी शोक सागर में डूब गये। इसके बाद लंका दहन का दिल दहलाने वाला प्रसंग प्रारम्भ हो जाता है जो कि २३ पदों में वर्णित है। तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य में ऐसा वर्णन कहीं भी नहीं है और हिन्दी साहित्य को तो यह अवश्य ही तुलसी की अमर देन है। निश्चित ही उन्होंने कहीं पर भयंकर आग देखी होगी और उसके आधार पर यह वर्णन किया होगा। लंका को जलाकर जब हनुमान सीताजी से विदा माँगने गये तो उनके नेत्रों में नीर भर आया और वचन स्नेह से शिथिल हो

गए। उनकी दयनीयता की स्थिति का चित्रण करने वाला यह पद बहुत सुन्दर है—

जारि वारि कै विधूम वारिधि बुझाइ लूम
नाइ माथो पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै
मातु ! कृपा कीजै, सहिदानि दीजै, सुनि सीय
दीन्ही है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै
कहा कहौं तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन
बड़ी अवलंब ही सो चले तुम्ह तोरि कै
तुलसी सनीर नैन नेह सो सिथिल बैन
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै।

आगे के ४ पदों में हनुमान का लंका के समुद्र को पार करके लौट आना वर्णित है। उनके लौटने से सभी को प्रसन्नता हुई और सब भालु तथा वानर आपस में गले मिलते हैं और उमंग में आकर समुद्र की बालू पर नाचते हैं। हनुमान का भी वे स्वागत करते हैं और हनुमान की बलिहारी जाते हैं। इसमें भी राम हनुमान-संवाद, लंका के लिए प्रस्थान, विभीषण की शरणागति जैसे प्रसंगों को बनाया गया है और लम्बी कथाओं को छोड़ दिया गया है। अन्त का एक पद जो कि राम की उदारता को बतलाता है कथा प्रवाह की दृष्टि से व्यर्थ है क्योंकि उसका सम्बन्ध रावण-वध के बाद विभीषण को मिलने वाली लंका से है न कि बिना रावण के मरे पहले ही दान देने में। इस प्रकार सुन्दरकाण्ड लंका के दाह तथा सीता की कुशल क्षेम के साथ समाप्त होता है। अन्य काण्डों की तरह इसमें कथा क्रम नहीं है, हाँ विस्तार अपेक्षाकृत अधिक नहीं है। 'मानस' में भी सुन्दरकाण्ड बहुत बड़ा काण्ड नहीं है। इस दृष्टि से भी देखा जाय तो सुन्दरकाण्ड दूसरे काण्डों की अपेक्षा अधिक सामग्री लिए हुए है।

'लंकाकाण्ड' में ५८ पद हैं, जिनमें पहला व चौथा पाँचवाँ छन्द लंका के निवासियों की चिन्ता को व्यक्त करते हैं क्योंकि हनुमान ने उनके हृदयों में यह डर बिठा दिया कि जिसका दूत ही इतना विनाशकारी और विध्वंसकारी है उसका स्वामी तो न जाने कितना बलशाली और पराक्रमी होगा। बीच के दो पद—दूसरा व तीसरा सीता और सीता की सखी त्रिजटा की बातचीत को लेकर लिखे गए हैं। यहाँ पर भी माता ने अपनी अपार आपत्ति को व्यक्त किया है। इसके बाद अगले तीन छन्दों में समुद्र पर सेतु बाँधकर पार पहुँचने की कथा है। रावण के द्वारा भेजे गए दूत रावण को सूचना भी देते हैं कि रघुनाथ जी अब समुद्र पार कर लंका में घुस आये हैं। पद ६ से लेकर १६ तक अंगद और रावण का संवाद वर्णित है। मानस की भाँति यहाँ पर भी अंगद रावण को श्रीराम से मिलने के लिए बहुत समझाते हैं और उसको बुरा भला तक कहने में किसी प्रकार का संकोच भी व अनुभव नहीं करते हैं। एक पद में उनकी निर्भीकता और रावण को तुच्छ समझने की भावना इस प्रकार है—

तू रजनीचर नाथु महा, रघुनाथ के सेवक को जनु हौं हौं
बलवान है स्वानु गली अपनी, तोहि लाज न गालु बजावत सौं हौं

बास भुजा दस सीस हरौ, न डरौ प्रभु आयसु भंग तें जा ही
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालकु तौ हौं।

रावण और मंदोदरी का वार्तालाप भी कम सुन्दर नहीं है। मंदोदरी ने जो सीख अपने पति को दी है वह भी बहुत मार्मिक है। कान्ता-सम्मत उपदेश जो मन्दोदरी ने दिया है वह सब उसके पति के हित के लिए है जिसको न करने या जिसका पालन न करने से रावण को मृत्यु का मुख देखना पड़ा। कहीं कहीं पर उसके कथनों में अशिष्टता और दुर्विनीतता भी आ गई है जो कि अशोभ्य है क्योंकि पति के लिए ऐसे शब्दों का व्यवहार शुभ प्रतीत नहीं होता। 'नीच' शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि तुलसी रावण की निंदा उसकी पत्नी के द्वारा भी कराना चाहते हैं क्योंकि वह उन के आराध्य राम का परम शत्रु है। यह प्रसंग विस्तार के साथ दिया गया है और १३ पदों में समाप्त हुआ है। ३० से लेकर ५१ तक वानरों और राक्षसों का संग्राम है जिसमें हनुमान और लक्ष्मण दोनों का अपराजेय पौरुष दिखलाया गया है। हनुमान का शत्रु तो सब के सिर पर चढ़ कर बोलता है। उनके युद्ध पराक्रम की सभी प्रशंसा करते हैं और स्वयं राम भी उनकी वीरता का गुण गान करते हैं। लक्ष्मणमूर्छा में ३ पद हैं जिनमें से एक तो हनुमान द्वारा बूटी को लाने के बहाने से पर्वत को ही ले आने का वर्णन करता है। इन्हीं में राम के शान्त स्वभाव को और भरत जी की कुशलता को बतलाया गया है। अन्त में युद्ध का अन्त नामक प्रसंग भी ३ पदों में है जिसमें रावण और कुम्भकरण के मर जाने से दिग्दिगन्त में व्याप्त होने वाली प्रसन्नता को दिखलाया गया है। वानर और भालु प्रसन्न हुए देव मुनि प्रसन्न हुए। उनकी प्रफुल्लता को नाच के पद में इस प्रकार प्रकट किया गया है।

मारे रन रातिचर रावनु सकुल दलि
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं
नाग नर किंनर बिरंचि हरि हर हेरि
पुलक सरीर हिएँ हेतु हरषतु हैं
बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराज
देखत बिषाद मिटै मोदु करषतु हैं
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै
तुलसी निहाल कै कै दिए सरखतु हैं।'

राम के द्वारा सभी को निर्भयता का परवाना बाँटे जाने के साथ ही लंका-काण्ड समाप्त हो जाता है। इस काण्ड में भी कथा की धारा अन्य काण्डों से कहीं सुस्थिर रूप से नहीं है। सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड दोनों में कथा का जितना प्रवाह है उतना और काण्डों में नहीं। मानस में बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड अत्यन्त विस्तृत हैं जबकि 'कवितावली' में संक्षिप्त हैं। अरण्यकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड तो केवल कथा की कड़ी मिलाने के लिए ही हैं। इस प्रकार उत्तरकाण्ड से पूर्व छः काण्डों की कथा १४२ पदों में समाप्त हो जाती है और सच तो यह है कि राम-कथा भी यहीं आकर समाप्त हो जाती है।

उत्तरकाण्ड १८३ पद हैं। *यह काण्ड आकार और विस्तार में पहले के छ काण्डों से बड़ा है।* इस काण्ड का सम्बन्ध राम की कथा से कोई भी नहीं है, क्योंकि न तो इसमें भरत मिलाप है और न रामराज्याभिषेक। इसमें या तो कवि ने केवल राम की प्रशंसा की है या फिर अपनी वन्दना को वाणी दी है। सुन्दरकाण्ड और लंका काण्ड में अभी जो कवि यौवन पर था, आज ही जिसका गुण था जिसकी अभिव्यक्ति में स्फूर्ति थी, जिसकी गति में वेग था, जिसकी वाणी में बल था और जिसकी समर्थता तथा दृढ़ता पग पग पर देखी जाती थी, वही उत्तरकाण्ड में आकर सहसा वृद्ध हो जाता है, उसका शरीर शिथिल हो जाता है मन ग्लानि से भर जाता है जीवन विपत्तिमय हो जाता है *बाहु वेदना विजड़ित हो जाती है अंग प्रत्यंग रोगी हो जाते हैं*, आत्मा में दैन्य और नैराश्य प्रवेश पा जाते हैं इसी कारण न यहां ओज है न कौशल है, न रूपकों का राग है, न अलंकारों की बहार है न भाषा की भंगिमा है और न कला की बारीगरी है। यहां पर तो आत्मनिवेदन है आत्म-समर्पण है आत्महीनता है आत्म पीड़ित और आत्म आलोचन है। ऐसा है कवितावली का उत्तर काण्ड।

उत्तरकाण्ड प्रसंगों का पिटारा है जिसमें छोटे बड़े अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं। अनेक अन्तर्कथाओं का भंडार इस काण्ड में है और राम के शील का चित्रण अनेक पदों में किया गया है। यहाँ पर काण्ड में आये हुए प्रसंगों को एक एक करके लिया जाता है और *उनमें वर्णित विषय को बतलाया जाता है।*

पहला प्रसंग है राम के शील का जो कि प्रारम्भ के ५८ पदों में है और बाद में भी स्थान स्थान पर दिखलाई देता है। इसमें राम की विशेषताओं कृपालुता दयालुता दानशीलता शरणागत वत्सलता—आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया है। वानर भालु विभीषण गणिका अजामिल जटायु शबरी आदि तो अपनाने और उन्हें इच्छित फल प्रदान करने वाले राम के शीलगुण की प्रशंसा की गई है और उन्हें एकमात्र सबका रक्षक बतलाया गया है। इन्हीं पदों में भक्ति की चर्चा भी की गई है और राम की उपासना को अन्य देवों की उपासना में कहीं अधिक लाभकर और अनिष्ट दाह कर बतलाया गया है।

दूसरा प्रसंग—जीवन चरित्र का है। यह प्रसंग ५६ पद से लेकर ८२ पद तक है और बाद में भी कई पदों में मिलता है। तुलसी ने अपने जीवन के विषय में जितने अन्तःसाक्ष्य इस काण्ड में दिए हैं उतने सम्भवतः किसी ग्रन्थ में नहीं दिए हैं। स्थान स्थान पर कवि ने आत्मदीनता प्रकट की है जिसमें पता चलता है कि कवि का जीवन कितना विषाद में व्यतीत हुआ और कितनी कटुता का उसने अनुभव किया। इसमें कवि का हृदय खुलकर व्यक्त हुआ है और उसने अपने को संसार से पार उतारने का भार अपने प्रभु को सौंपा है। राम का गुलाम कहलाकर भी उसका यदि उद्धार प्रभु ने न किया तो फिर वह जायगा ही कहां? इसी कारण तुलसी ने कई स्थलों पर अपनी खीझ भी व्यक्त की है और उलाहना दिया है कि सर्प के सुत को भी पाल कर मारना और विषवृक्ष को लगाकर उजाड़ना कोई अच्छी रीति नहीं है।

तीसरा प्रसंग है—*राम नाम महात्म्य का। यह प्रसंग* भी कई पदों में है और

लगभग सारे ही काण्ड म यथा अवसर आया है। तुलसी राम का नाम लेते हुए कभी नहीं थकते। मानस म भी नाम महिमा को उन्होंने गाया है और उस नाम को राम स भी बडा बतलाया है। कवितावली म भी नाम का प्रताप प्रभु स प्रबल माना गया है—

प्रभु तें प्रबल प्रतापु प्रभु नाम को

नाम के प्रताप से ही वाल्मीकि ब्रह्म समान हो गये, गज गणिका भी नाम लेकर तर गये, और द्रौपदी की भी लाज बच गई। कलिकाल म तो राम के नाम का सहारा ही सब कुछ है। नाम के प्रताप स ही विनाश नहीं लगा करते और सत्व सुरक्षा बनी रहती है। राम नाम के प्रभाव स इतनी विपत्तियाँ टल जाया करती हैं—

सोच संकटनि सोचु-संकटु परत, जर
जरत प्रभाउ नाम ललित ललाम को
बूडि औ तरति बिगरीऔ सुधरति बात
होत देखि दाहिनो सुभाउ बिधि बाम को
भागत अभागु अनुरागत बिरागु भागु
जागत आलसि तुलसी हू से निकाम को
आई धारि फिरि के गोहारि हितकारी होति
आई मीचु मिटति जपत राम नाम को।

नाम स्मरण स भाग्य जग जाता है विधि भी अनुकूल हो जाता है और आई हुई मृत्यु भी दूर खडी रह जाती है। एक अन्य उदाहरण देकर तुलसी न इस बात को भी सिद्ध किया है कि नाम म बडी शक्ति छुपी है। वे कहते हैं कि जब एक यवन को सुअर ने धक्का देकर ढकेल दिया और जब वह मरने लगा व उसने हराम ने मार डाला ऐसा कहा। कहने की देर थी कि उसे भगवान राम का धाम मिल गया। फिर नाम की महिमा को विस्मृत कैसे किया जा सकता है—

'अधरो अधम जड जाजरो जरॉ जवनु
सूकर के सावक ढरॉ ढकल्यो मग म
गिरो हिय हहरि हराम हो हराम हन्यो
हाय ! हाय ! करत परीगो काल फग म
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो
नाम के प्रताप बात बिदित है जग म
सोई राम नामु जो सनेह सों जपत जनु
ताकी महिमा क्यों कही जाति है अग म।

चौथा प्रसंग है—कलि वर्णन का। इस प्रसंग म कवि कुछ तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण भी है। धार्मिक सामाजिक और आर्थिक दशाओं का जो वर्णन तुलसी ने किया है, वह उनके समाज का चित्र उपस्थित करता है। कराल कलिकाल ने तुलसी पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहा था परन्तु उन्होंने उस स्पष्ट शब्दों म कह दिया था कि हे कलि ! यदि तुम जान बूझ कर या बलपूर्वक मुझको दबाना चाहोगे तो

परिणाम बुरा ही निकलेगा क्योंकि जिस तरह गरुड़ को ब्राह्मण उगलना पड़ा था, वैसे ही मुझे भी तुम निगल नहीं सकते—

जानि कै जोर करौ परिणाम तुम्हैं पछितैहौ पै मैं न भिनैहौं
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्यों ही तिहारें हिएँ न हितैहौं।"

पाँचवाँ प्रसंग है—राम गुणगान का। सात आठ पदों में राम की प्रशंसा में पद पदी स्तुतियाँ हैं, जो एक प्रकार से स्तोत्र पद्धति का स्मरण दिलाती हैं। इसके बाद ही नारी निंदा की है और भगवान् की भक्ति करने वाले भक्तों को उससे विरक्त रहने के लिए सजग किया है।

छठा प्रसंग—सगुण निर्गुण चर्चा का है। तीन पदों में पत्थर पूजा का महात्म्य बतलाया गया है और कहा गया है कि सगुण रूप ही सहायक होता है न कि निर्गुण रूप क्योंकि प्रह्लाद को बचाने के लिए भगवान् पत्थर से ही प्रकट हुए थे। कंस और कृष्ण की कथा को भी कवि ने चार पद दिए हैं। उस कथा में भी योग और ज्ञान की खिल्ली उड़वाई गई है। एक उदाहरण में कुब्जा की रेखा भी योग और ज्ञान की खिल्ली उड़ाई गई है। एक उदाहरण में कुब्जा की रेखा भी दौड़ती है जिसमें कि गोपियाँ कुब्जा की तरह का नाटी कूबड़ बाँध कर अपने आराध्य को रिझाना चाहती हैं।

सातवाँ प्रसंग—कई वर्णनों को लेकर चलने वाला प्रसंग है। सीतावट-वर्णन तीन पदों में है जिसके एक पद में वट का रूपक बाँधा गया है। चित्रकूट वर्णन भी तीन पदों में और एक पद में चित्रकूट में लगी भयानक आग का भी चित्रण है। तीर्थराज प्रयाग की सुषमा एक पद में दिखलाई गई है। श्री गंगा महात्म्य भी तीन ही पदों में बतलाया गया है और उसके स्नानमात्र का स्मरण करने वाले जन के लिए विष्णुलोक में निवास की नींव पड़ जाती है यह भी उसकी तरंगों के दर्शन का प्रभाव दिखलाया गया है। सबसे अधिक महात्म्य तो यहाँ दर्शाया गया है कि गंगा को परब्रह्म का द्रव रूप माना गया है—

ब्रह्म जो व्यापकु बेद कहैं गम नाहिं गिरा गुन ग्यान गुनी को
जो करता भरता हरता, सुर साहेबु साहेबु दीन दुनी को
सोइ भयो द्रव रूप सही जो है नाथु बिरंचि महेस मुनी को
मान प्रतीति सदा तुलसी जगु काहे न सेवत देवधुनी को।

अन्नपूर्णा माहात्म्य भी एक पद में है और उसे धार्मिक बिनाशिनी कहा गया है।

आठवाँ प्रसंग—शंकर स्तवन का है। यह प्रसंग २० पदों में है जिसमें पहले चार पद स्तोत्र पद्धति के हैं। बाद में उनकी विशेषताओं का अंकन किया गया है जो कि परस्पर विरोधिनी सी लगती हैं। शिव की आराधना का फल भी बतलाया गया है और स्वयं तुलसी के द्वारा अपनी बाहुवेदना से मुक्त होने के लिए प्रार्थना भी की गई है। यहाँ पर ही बाहु-पीड़ा का आभास कवि अपने पाठकों को करा देता है। शिव की स्तुति करके तुलसी ने शैवों और वैष्णवों के बीच पड़े हुए मतभेद को मिटाने का स्तुत्य प्रयास किया है। 'रामचरितमानस' में तो यह समन्वय अपनी चरमसीमा को पहुँच गया है। राम के मुख से तुलसी इसी प्रयत्न के फलस्वरूप 'मानस' में इस प्रकार

'कवितावली' मे भक्ति, भक्त और भगवन्त का स्वरूप

(क) भक्ति का स्वरूप

भगवान का भजन करना, उनके प्रति अतिशय अनुराग को प्रदर्शित करना मनसा वाचा कर्मणा एकाग्रचित्त और दत्तचित्त होकर उनकी अनवरत अपने मन मन्दिर म आरती उतारना ही भक्ति है। जब ऐसा अनुराग या प्रेम सामान्य न रह कर असामान्य बन जाता है लौकिक न रहकर अलौकिक बन जाता है पार्थिव न रहकर अपार्थिव बन जाता है तब वह भगवद्भक्ति का रूप धारण कर लेता है। भक्ति की जो परिभाषाएँ महर्षियों तथा भक्तो द्वारा बतलाई गई हैं उनका अब यहा पर कुछ विवेचन करना आवश्यक है। देवर्षि नारद ने अपने नारद-सूत्र म भक्ति की परिभाषा की है कि वह प्रेमस्वरूपा और अमृतस्वरूपा होती है—

सा त्वस्मिन् परम प्रेम स्वरूपा अमृतस्वरूपा च'

महर्षि शाण्डिल्य ने अपने शाडिल्यसूत्र म कहा है कि ईश्वर म प्रकृष्ट रूप स अनुरक्ति करना ही भक्ति है— परानुरक्तिरीश्वर।'

भक्तराज प्रह्लाद के मुख से विष्णु पुराण म भक्ति का लक्षण इस प्रकार सुनाई पडता ह जो प्रीति अनपायिनी है वह ईश्वर का स्मरण करत हुए मेरे हृदय स कभी भी विलीन न होवे —

या प्रीति रविवेकाना विषयेष्वन पायिनी
त्वामनुस्मरत सा म हृदयान्मापसपतु।

गोस्वामी जी के समकालीन आचार्य मधुसूदन सरस्वती न भी भक्ति की मीमासा की है कि सर्वेश म मन की अनन्य वृत्ति ही भगवद्भक्ति है—

सर्वेश मनसा वृत्ति भक्तिरित्यभिधीयते —(भक्ति रसायन)

जगद्गुरु शकराचार्य न अपने ग्रन्थ शिव मानस पूजा स्तोत्र म भक्ति का बहुत ही व्यापक रूप म अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि जो भी कर्म मेरे द्वारा किया जाता है वही सम्पूर्ण रूप मे भक्ति का कर्म है—

यत् यत् कर्म करोमि, तत्तदखिल शम्भो ! तवाराधनम्

भक्ति का स्वरूप निर्णय करने के बाद अब तुलसी की भक्ति का स्वरूप समझना आवश्यक है। भक्ति के विषय म तुलसी न स्वय ही अपना अभिमत मानस म प्रकट किया है। काकभुशुडि के मुख से यह उन्ही न कहलवाया है—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि
भजहु राम पद-पकज अस सिद्धान्त विचारि।'

तुलसी भव राम को दास कहाइ हिएँ धरै चातक की धरनी
करि हंस को वेषु बड़ो सबसों, तजि दे बक बायस की करनी।"
—(कविता० उत्तर० पद० ३२)

आगे और भी कहते हैं कि यदि भारत भूमि में जन्म मिला हो, उच्च कुल में जन्म हुआ हो, और अच्छा शरीर व समाज भी जिसे मिला हो उसे आधानि को छोड़कर, वर्षा, ग्रीष्म शब्द प्रभंजन को सहन कर, चातक की तरह चतुर बनकर भगवान को भजना चाहिए और जो ऐसा नहीं करता वह अवश्य ही हेम के हल में कामधेनु को वाहन बनाकर विष बीज वपन करता है—

'भलि भारत भूमि भलें कुल जन्मु
समाज सरीर भलो लहि कै
करषा तजि कै परुषा बरषा
हिम मारुत घाम सदा सहि कै
जो भजै भगवानु सयान सोई
तुलसी हठ चातकु ज्यों गहि कै
नतु और सबै विष बीज बए
हर हाटक कामदुहा नहि कै।
—(कविता० उत्तर० पद० ३३)

भक्ति के प्रकार

भागवत में नौ प्रकार की भक्ति बतलाई गई है
श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं पाद सेवनं
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण पाद सेवन, अर्चन वंदन दास्य सख्य और आत्म निवेदन—के नाम से प्रसिद्ध हैं। देखा जाय तो ये भक्ति के भेद नहीं हैं अपितु नौ चरण या सोपान हैं जिन पर चलकर एक भक्त या सेवक भगवान् के स्वरूप को सम्यक रूप से समझ सकता है।

हनुमत्-संहिता' में भक्ति के पाँच भेद स्वीकार किये गये हैं। वे हैं—(१) शांत (२) दास्य या विनय (३) सख्य (४) वात्सल्य (५) शृंगार या मधुर। यहाँ हमारा तात्पर्य दास्य या विनय नाम की भक्ति से ही है क्योंकि वही तुलसी को मान्य है। इस विनय की भी सात भूमिकाएँ वैष्णव सम्प्रदाय में बहुत प्रचलित हैं और जो भक्ति के शास्त्रों में भी उद्दिष्ट की गई हैं—

दैन्य च मान मर्षित्व, भयस्य दर्शनं तथा
भर्त्सनाश्वासनं चैव मनोराज्य विचारणा
मुनिभिरुक्ता भक्तानां सप्तता भूमिका स्मृता।

(१) दीनता (२) मान मर्षण (३) भय दर्शन (४) भर्त्सना (५) आश्वासन (६) मनोराज्य और (७) विचारण। इन सातों भूमिकाओं को अब यहाँ 'कवितावली' के आधार पर सोदाहरण उपस्थित किया जाता है।

दीनता

दीन बन कर भक्त भगवान् के सामने गिडगिडाता है और अपने को ससार के सभी दोषो का भडार मानता है तथा उनका कारण भी वह अपन को ही मानता है। वह अजामिल जसे पापियो से भी अपने को बडा पापी समझता है और भगवान् को उनके पतित पावन गुण का ध्यान दिलाता है तथा अपने उद्धार के लिए भी प्राथना करता है। तुलसी जस भक्त ने कवितावली म अनेक पदो म दीनता प्रकट की है। यहाँ पर एक उदाहरण प्रस्तुत है —

मोह-मद मात्यो रात्यो कुमति कुनारिन सो
बिसारी वेद लोक लाज आकरो अचतु है
भाव सो करत मुह आव सो कहत कछु
काहू की सहत नाहि करकस हतु है
तुलसी अधमाई अधिक हू अजामिल तें
ताहू म सहाय कलि कपट निकतु ह
जब को अनक टेक एक टक ह्वै क की जो
पेट प्रिय पूत हित राम नामु लेत ह।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८२)

मान मथण

मान अभिमान या गुमान जिस व्यक्ति म होगा वह अपन अहकार के वश म होकर कभी भी दीन नही बन सकता। जो दीन बन सकता है वही निरभिमान बन सकता है। अत जो भक्त दीन है उसक लिए दूसरी बात यह भी है कि वह अहकार रहित भी हो। भगवान् गुमान को सहन नही करत हैं और जो अभिमान करता है उसका वे समाप्त कर दत हैं—

अपनीस अनक भए अवनी जिनक डर तें सुर सोचसु साही
मानव दानव दव सतावन रावन घाटि रच्यो जग माही
ते मिलये धरि धूरि सुजोधनु ज चलत बहु छत्र की छाही
बद पुरान कहैं जगु जान गुमान गोविन्दहि भावत नाही।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ११२)

भय दशन

मान-मथण क बाद भक्ति माग पर चलन क लिए तीसरा चरण है—भय-दशन। इस दशा म भक्त अपन मन को भय दिखलाता है और उसको फिर स भगवान् क सम्मुख रखन का प्रयत्न करता है—

सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि र
सबकी ममता तजि क समता सजि सत समाज बिराजहि रे

नर-देह कहा करि देखु विचार, बिगारु गँवार न काजहि रे
जनि डारहि लालुप कूकर ज्यो, तुलसी मजु कोमल राजहि रे।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद ३०)

पुत्र-कलत्र बधु-बाधव कोई अपना नही है ममता का त्याग करना ही श्रेष्ठ है तथा अन्त म शरीर भी अपना नही है, ऐसा भय दर्शन भक्त मन को कराता रहता है ताकि वह विचलित न हो जाय और भ्रष्ट न हो जाय।

भर्त्सना

भर्त्सना मे भक्त मन को फटकारता है और जागते रहने का पाठ भी पढाता रहता है। यदि वह कभी इतस्तत होना भी चाहता है तो डाट डपट कर उसे फिर विनियुक्त करना चाहता है। यह एक प्रकार की कडी चेतावनी ही है जो कि पग पग पर दौडाने वाले मन के लिए जजीर का सा काम किया करती है—

विषया-परनारि निसा-तरुनाई सो पाइ परयो अनुरागहि रे
जम के पहरू दुख रोग वियोग बिलोकत हू न विरागहि रे
ममता बस तें सब भूलि गयो भयो भोरु महाभय भागहि रे
जरठाइ दिसा रविकाल उग्यो अजहूँ जड जीव! न जागहि रे।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ३१)

मृत्यु का भयकर डर दिखाकर और यमराज की कठोर यातना का भान करा कर भक्त मन को यह दिखला देना चाहता है कि अब तक हे मन! तूने जो भी किया वह ठीक किया परन्तु अब अचेत रहने का समय नही है। तू उठ और भगवान् का स्मरण कर जिससे तेरा मनुज जन्म सफल हो सके।

आश्वासन

जिस भगवान् की भक्ति की जा रही है उस पर परम विश्वास का होना आवश्यक है क्योकि विश्वास ही फलदायक कहा गया है 'विश्वासो फलदायक'। भगवान् के गुणो म विश्वास किए बिना भक्त अपना भला नही कर सकता और न विश्वास के अनुकूल कृपाकाक्षी बन सकता है—

'मीत बालिबधु पूतुदूतु दसकध बधु
सचिव, सराधु कियो सबरी जटाई को
लक जरी जोहे जिय सोचु सो विभीषन को
कहौ एसे साहेब की सेवा न खटाइ को
बडे एक एक तें अनेक लोक लोकपाल
अपने अपने को तौ कहैगो घटाइ को
साँकरे के सेइबे, सराहिबे सुमिरिबे को
रामु सो न साहेबु न कुमति कटाइ को।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद २२)

मनोराज्य

भक्त मनोराज्य की स्थिति में अनेक प्रकार की अभिलाषाएं तथा आशाएं करने लगता है तथा अपने जीवन को शुद्धता और सात्विकता के सांचे में ढालने का सुखद प्रयत्न करने लग जाता है—

रावरो कहावों गुन गावों राम ! रावरोई
रोटी द्वै हों पावों राम ! रावरी ही कानि हौं
जानत जहान मन मेरेहूँ गुमान बड़ो
मान्यो मैं न दूसरो न मानत न मानि हौं
पाच की प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई
तुम्ह अपनायो हौं तब ही परि जानि हौं
गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुन्द की सी भाइ बातें
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनि हौं ।

—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ६३)

विचारण

इसमें धार्मिक शास्त्रों का अनुशीलन भक्त करता है तथा उनका सार ग्रहण करने की चेष्टा भी करता है । इसके साथ ही वह भगवद्भक्ति को सरलतम मानता है और ईश्वर प्राप्ति के अन्य उपायों की ओर अनादर का सा भाव दिखलाकर उन्हें स्वीकार भी नहीं करता है—

न मिटै भव संकटु दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो
कलि में न विरागु न ग्यान कहूँ सब लागत फोकट झूठो जटो
नटु ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ रसनाँ निसि बासर रामु रटो ।

—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८६)

आवश्यक नियम

इन भूमिकाओं चरणों या सोपानों का वर्णन करने के बाद अब कुछ आवश्यक नियमों का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिनका पालन करना भी भक्त का सहज धर्म है । ऐसे नियम छह हैं जो इस प्रकार है—

अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वर्णनं तथा
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये शरणागतिलक्षणम् ।

(१) अनुकूल होने का संकल्प (२) प्रतिकूल का त्याग (३) रक्षा का विश्वास (४) गोप्ता का वर्णन (५) आत्म निक्षेप (६) कार्पण्य । ये नियम शरणागति का लक्षण निर्धारित करते हैं और भक्त को शरणागति के योग्य बनाते हैं । अब एक एक को सोदाहरण स्वरूप उपस्थित किया जाता है—

अनुकूल होने का सकल्प

भगवान् की गुण गाथा का नित्य प्रति सुनना और कुपथ की ओर कभी न जाना तथा सतो का समागम करना ही सकल्प है—

'सुनु कान दिए, नित नेम लिए रघनाथहि के गुन-गाथहि रे
सुख मदिर सुन्दर रूप सदा, उर आनि धरे धनु भाथहि रे
रसना निसि बासर सादर सो, तुलसी जपु जानकी नाथहि रे
करु सग सुसील सुसतन सो, तज कूर कुपथ कुसाथहि रे।
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद २९)

प्रतिकूल वजन

उपास्य के प्रतिकूल जो भी व्यक्ति हैं जो भी वस्तुएँ है और जो भी अवगुण हैं उनका सवथा त्याग करना ही प्रतिकूल वजन है—

"गज-बाजि घटा, भल भूरि भटा बनिता सुत भौंह तक सब व
धरनी धनु धाम सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुखु स्वै
सब फोकट सादक है तुलसी अपनो न कछू सपनो दिन द्व
जरि जाऊ सो जीवनु जानकीनाथ जिय जग म तुम्हरो बिनु ह्व।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद ४१)

रक्षा का विश्वास

भगवान् अवश्य ही रक्षा करेंगे तथा किसी भी परिस्थिति म अनिष्ट नही होन देंगे यह भी विश्वास भक्त को करना आवश्यक है—

'जोग न विरागु जप तप जाग त्यागु व्रत
तीरथ धम न जानौं बेद विधि किमि है
तुलसी सो पोच न भयो है, नहिं ह्व है कहू
सोच सब याके अघ कसे प्रभु छमि है
मेरे तो न डरु रघुवीर सुनौ साची कहौ
खल अनख है तुम्हें सज्जन न गमि है
भल सुकृती के सग मोहि तुला तौलिए तो
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमि है।"
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद ७१)

गोप्ता वणन

अपने रक्षक का वणन इस नियम म आता है तथा उसके दीन रक्षक रूप का स्मरण बार बार किया जाता है—

'जाहिर जहान म जमानो एक भाँति भयो
बेंचिए विबुध धेनु रासभी बे साहिए

एसऊ कराल कलिकाल म नूपात । तेरे
नाम कें प्रताप न त्रिताल तन दाहिए
तुलसी तिहारो मन वचन करम, तेंहि
नातें नेहनमु निज ओर तें निवाहिए
रक कें न आज रघुराज ! राजा राजनि कं
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ७९)

आत्म निक्षप

कायिक, वाचिक और मानसिक रूप स सब कुछ श्री चरणा म अपण कर दना और स्वय समर्पित हो जाना ही आत्म निक्षप है—

लाग कहैं अरु हौंहु कहौं जनु खोटो खरो रघुनायक ही को
रावरी राम ! बडी लघुता जसु मेरो भयो सुखदायक ही को
क यह हानि सहौ बलि जाउ कि मोहू करौ निज लायक ही को
आनि हिए हित जानि करौ ज्यों हौं ध्यानु धरौं धनु सायक ही को ।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ५९)

कापण्य

अत म अपना कापण्य अपना दैन्य दिखलाकर और अप ओघ को स्वीकार कर भगवान् से शरण माँगना और उनके परिमाजन क लिए प्राथना भी करना इस कापण्यस्थिति म सम्मिलित है—

जीज न ठाउ न आपन गाउ सुरालयहू को न सबलु मेरे
नामु रटो, जमबास क्या जाउ को आइ सक जमकिंकरु नेरें
तुम्हरो सब भाति, तुम्हारिअ सो तुम्ह ही बलि हौ मोको ठाहरु हेरें
बरख बाँह बसाइए प तुलसी घरु व्याध अजामिल खेरे ।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ९२)

अपना कोई रहन योग्य स्थान न बताकर व्याध और अजामिल के खेडे म अपने घर का बसाने की याचना प्राथना करना ही शरण की भीख मागना है ।

(ख) भक्त का स्वरूप

भगवान् की भक्ति करने वाले भक्तो की भी कुछ असामान्य विशेषताए होती हैं जिनके आधार पर हम भक्तो को भली भाँति जान सकते हैं । जिसने ससार की ओर स अपनी इद्रिया को हटा लिया हो और भगवान् की महिमा के गान मे मन लगा दिया हो वह निश्चित ही सवसाधारण स अलग है क्याकि भक्ति करते समय इद्रियाँ और मन अवश्य ही बाधा बनकर उसके सामन आते हैं । भक्ता का इद्रिया को भी वश म रखना आवश्यक हो जाता है । इसीलिए गोस्वामी जी ने भक्ता की कुछ

विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'मोह स्मान सयान गुठान जे
नारि विलोकनि-बान तें बांच
कोप-कृमानु गुमानु अवाँ घट
ज्यां जिनके मन आव न आंचे
लोभ सव नट क वस ह्वै
कपि ज्यां जग म बहु नाच न नाचे
नीके हैं साधु सब तुलसी
प तेई रघुवीर का सवक साच।'
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ११८)

पद म आये हुए चार शब्द—काम (कामिनी-कटाक्ष) क्रोध (कोप) अहंकार (गुमानु) तथा लोभ स्पष्ट इस बात की ओर संकेत करते है कि भक्त म इन चारों क प्रति स्वाभाविक विरक्ति होनी आवश्यक है। उसम सच्चापन तभी आ सकेगा जब कि वह इन पर विजय प्राप्त करेगा, नही तो वह कभी भी अपने लक्ष्य से च्युत हो सकता है और अपने गन्तव्य तक पहुंचने म असमर्थ हो सकता है। राम क पास पहुंचाने वाले, राम को भजन करने वाले राम को सच्चे मन से भजनेवाले भक्त के अवगुण जब समाप्त हो जाते हैं तो वह निर्मल बनकर श्रीनिकेत राम से अपना इच्छित फल पा जाता है और उसका उद्धार हो जाता है—

को न क्रोध निरद्ह्यो काम बस केहि नहिं कीन्हो
को न लोभ दृढ फंद बांधि त्रास न करि दीन्हो
कौन हृदयँ नहिं लाग कठिन अति नारि नयन सर
लोचन जुत नहिं अंध, भया श्री पाइ कौन नर
सुर नाग लोक महि मंडलहु, को जु मोह कीन्हो जय न
कह तुलसीदासु सो ऊबर, जेहि राख रामु राजिवनयन।
—(कविनावली उत्तरकाण्ड, पद ११७)

इस पद म आये 'मोह' को मिलाकर हम पांच अवगुण मान सकते हैं। य अवगुण भक्तो के गुण बन जाते हैं यदि वे इन सबको जलाकर राख करने म अपने आत्म-बल, का परिचय देते हैं। काम क्रोध, लोभ और अहंकार ऐसे शत्रु हैं जिनका दलन किये बिना किसी प्रकार की शान्ति नही आ सकती और जिनका विच्छिन्न किए बिना मार्ग भी निर्विघ्न नही हो सकता। शुद्ध प्रबुद्ध आत्मा पर परदा डालने वाले ये ही हुआ करते हैं और जब इनका आवरण हट जाता है, तभी आत्मा-परमात्मा बन जाया करती है।

छल और कपट भी भक्त क मार्ग के लिए अवरोध हैं इसलिए जब तक वह इनको भी त्याग नही देता तब तक भगवान् क मंदिर मे प्रवेश भली प्रकार नही पा सकता। जो भक्त ऐसा कर लेता है वह पूजनीय भी बन जाता है और देवता तथा तीरथ उसको मनाने के लिए आते हैं तथा उसका शरीर-स्पर्श पाने क लिए इच्छुक

रहते हैं। वास्तव में ऐसा ही व्यक्ति पुण्यवान्, सज्जन, शीलवान्, सुजान और गुण निधान समझा जाता है—

> सो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसील सिरोमनि स्व
> सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तनु छ्वै
> गुनगेहु सनेह को भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै
> सतिभायँ सदा छल छाँड़ि सबै, तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै।"
>
> —(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद ३४)

जो भगवान् की प्राप्ति के लिए और संसार को दिखाने के लिए गेरुए वस्त्र पहनते हैं लाल-लाल गुदड़ी को धारण करते हैं, नाना प्रकार के तिलक, चन्दन और छापे लगा कर भोले जनों को ठगते हैं आग को चारों ओर रखकर और बीच में बैठकर ध्यान लगाते हैं, भस्म लगाकर रमते जोगी का रूप धारण कर लेते हैं अनेक प्रकार के योग आसन करके अपना प्रभुत्व सब पर जमाना चाहते हैं सन्त भगवान् को मनको के गिनने में मन में ले आना चाहते हैं लम्बे लम्बे केश धारण करके अपनी लटों में लड्डू और गट्टे डाल रहते हैं स्वादिष्ट भोजन करके अपने पेट का पोषण किया करते हैं और स्वादिष्ट वस्तुएं खाकर खूब मस्तमौला बना करते हैं रसरामरंग भरी चिकनी चुपड़ी बात करके सबको मोह लिया करते हैं काम क्रोध लोभ मोह की माया में मग्न रहते हैं राग रोग इर्ष्या कपट कुटिलता की कलाबाजी में प्रवीण बनकर नरक जाने की तैयारी किया करते है और बहुरूपिया बनकर अनेक प्रकार की चमत्कारी का प्रदर्शन किया करते है वे ढोंगी और दम्भी भक्त भगवान् के सच्चे भक्तों की कोटि में नहीं आ सकते—

> वेष सुबनाइ सुचि बचन कहैं चुवाइ
> जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की
> कोटिक उपाय करि लालि पालिअत देह
> मुख कहिअत गति राम ही के नाम की
> प्रग- उपासना दुराय दुरवासनाहि
> मानस निवास भूमि लोभ मोह काम की
> राग रोग ईरिषा कपट कुटिलाई भरे
> तुलसी से भगत भगति चहैं राम की।
>
> —(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद ११६)

इसलिए जो जानकीनाथ का निष्कपट भाव से जन नहीं बन जाता वह चाहे स्मृति में ब्रह्माजी से भी बढ़ जाय, रुद्र की शक्ति से अपनी शक्ति अधिक संचित कर ले, कुबेर के धन से भी अपना धन अधिक कर ले, चाहे योग प्राणायाम और समाधि को धारण करके अपने चंचल मन को भी अचंचल बना ले, चाहे पवन, पावक, सोम, पूषन आदि से भी बल में बढ़ चढ़कर हो जाय सब प्रकार से अशक्त सिद्ध हो जाता है—

> "सुरराज सो राजसमाजु समृद्धि बिरंचि धनाधिप-सो धनु भो
> पवमानु-सो, पावकु-सो, जमु, सोम-सो पूषनु-सो, भव भूषनु सो

करि जोग, समीरन साधि समाधि कै धीर बड़ो, बसहू मनु भा।
सब आपु गुमान कहै 'तुलसी जो न जानकीजीवन को जनु भा।"

—(कवितावली उत्तरकाण्ड, पद ८२)

मुख्य बात तो यह है कि काम, क्रोध, लोभादि तभी तक व्यक्ति के साथ संयुक्त रहते हैं, जब तक कि वह भगवान् का भक्त नहीं हो जाता। भगवान् का जन बनते ही ये सब के सब अपना रास्ता नापते हैं, भागने की तैयारी करते हैं और अपनी जान बचा-कर चलते बनते हैं—

'तौलौं लोभ लोलुप ललात लालची लबार
बार बार लालचु धरनि धन धाम को
तबलौं बियोग रोग-सोग भोग जातना को
जुग सम लागत जीवनु जाम जाम को
तौलौं दुख दारिद दहत अति नित तनु
तुलसी है किंकर बिमोह कोह काम को
सब दुख आपने निरापने सकल सुख
जौलौं जनु भयो न बजाइ राजा राम को।

—(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद १२४)

भगवान् का बनते ही भक्त की दीनता हीनता मलीनता पलायन कर जाती है। उसका क्लेश जाता रहता है, देश विदेश के भ्रमण से वह मुक्त हो जाता है। वह अच्छा जीवन व्यतीत करने लगता है सुख चैन से उठता बैठता है और अच्छे स्थान को अपना धाम बनाकर रहने लगता है—

'तौलौं मलीन हीन दीन, सुख सपनें न
जहाँ तहाँ दुखी जनु भाजनु कलेस को
तौलौं उबेने पाय फिरत पेटौ खलाय
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को
तबलौं दयावनो दुसह दुख दारिद को
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को
जबलौं न भजै जीहँ जानकी जीवनु रामु
राजनि को राजा सो तौ साहिबु महेस को।'

—(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद १२५)

'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में भगवान् ने स्वयं ही उन गुणों का बखान किया है जो कि एक भक्त में होने चाहियें। वे विशेष गुण इस प्रकार हैं—

'बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई, एहि आचरन बस्य मैं भाई
बयरु न बिग्रह आस न त्रासा, सुखमय ताहि सदा सब आसा
अनारंभ अनिकेत अमानी, अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा, तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई, दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई

मम गुन ग्राम नाम रत तजि ममता मद मोह्
ताकर सुख सोइ जानइ, चिदानंद संदोह—(उत्तरकाण्ड ४६)

इसमें उन्हीं गुणों का कथन किया गया है जिनको भगवान् भक्त में चाहते हैं।

(ग) भगवन्त का स्वरूप

तुलसी के आराध्य उपास्य इष्टदेव और पूज्यदेव भगवान् राम हैं। वे शील-शक्ति-सौंदर्य सम्पन्न हैं। शील सम्पन्नता के कारण वे जन मन रंजनकर्ता हैं, दाप दुख दारिद्र्य दमनकर्ता हैं, दयानिधान दीनदयाल हैं करुणानिधि, दीनबन्धु गुनसिंधु हैं सरणागत पालक हैं अनाथनाथ हैं उनकी ऐसी ही विशेषताओं को लेकर यहां पर पहले शील की चर्चा की जाती है जिससे तुलसी के भगवन्त राम का शीलस्वरूप स्पष्ट हो जायेगा।

शील

शील का शब्दार्थ है शुद्ध आचरण। जिस व्यक्ति का आचरण शुद्ध होता है, वह स्वभावतः हमारी श्रद्धा का पात्र बन जाता है। कोशलपति राम में शील की इतनी अधिकता है कि तुलसी ने उनके इस शील स्वभाव का हृदयहारी चित्रण किया है। यह शील ही ऐसा गुण है जिसके वशीभूत होकर जानकीनाथ बिगड़ी को सुधार देते हैं, सराक को अशाक बना देते हैं पतित को पावन कर देते हैं। यही शील शब्द इतना व्यापक है कि उसमें समस्त चरित्र की उज्ज्वल और उदात्त विशेषताओं का समावेश हो जाता है। इसी शील के अन्तर्गत अन्य विशेषताएं भी समाहित हो जाती हैं जैसे कृपालुता दयालुता उदारता परदुखकातरता आदि। राम के ऐसे ही शील स्वभाव को देखकर तुलसी ने अपना सारा दुख कह दिया था और राम ने भी उनके लोक-परलोक को सुधारने में तनिक भी देर नहीं लगाई थी।

पतितों को तारने का उनका स्वभाव है। वे नाम के स्मरण मात्र से ही उद्धार कर देते हैं। नीच जाति में उत्पन्न हुए लोगों को अपनाने में भी उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। उनके ऐसे ही शील-स्वभाव की प्रतीति तुलसी को बहुत है और उन्हें विश्वास है कि राम उनकी रक्षा अवश्य करेंगे क्योंकि राम प्रण को निभाने वाले हैं—

नामु लिए पूत को पुनीत कियो पातकीस
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की
छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पांति
कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंडे भील की
तुलसीऔ तारिबो बिसारिबो न अन्त मोहि
नीकें है प्रतीति रावरे सुभाव-सील की
देऊ तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन को
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १८)

अब शील के अन्तगत अन्य विशेषताओ को एक-एक कर के लिया जाता है।

(क) कृपालुता दयालुता दीनबधुता

राम म इन गुणा की इतनी अधिकता है कि जो कोई भी उनके द्वारा अपनाया जाता हैं, वही काम का बन जाता है। दुखिया क लिए वे एक अमूल्य सहारा हैं तथा गरीब निवाज हैं। शोक म डूबत हुए सुग्रीव का उन्होने ही निकाला था, नीच निशाचर और शत्रु बधु विभीषण को उन्होने ही गौरवशाली बना दिया था, जिस बात का ससार जानता है—

उन जसा दयानिधान ससार म कोई नही ह। उन्हान अहल्या क प्रति दया दिखलाई जिसक कारण वह शिला स ललना बन गई। जटायु तथा निषाद से व ही मिले और शबरी के पास भी स्वय चले गय।

मिला श्रापु पापु गुह गीध को मिलापु
सबरी क पास आपुचलि गए हौ सो सुनी मैं
सवक सराहे कपिनायकु विभीषनु
भरत सभा सादर सनेह सुर धुनी ह मैं
आलसी अभागी, अघी आरत, अनाथपाल
साहबु समथ एकु नीकें मन गुनी मैं
दोष दुख-दारिद-दलैया दीनबधु राम !
तुलसी न दूसरो दयानिधानु दुनी मैं।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद २१)

और कृपालु ता किसी कारण स ही कृपा दिखलात हैं परन्तु राम की ऐसी बान नहा है, व तो बिना कारण ही कृपा करने वाले हैं तथा अपनी विशाल भुजा से डूबत हुए का निकाल लन वाल हैं। जहाँ पर यमराज द्वारा दी गइ भयकर यातना है दुखमय वैतरिणी नदी बहती है जिसकी धारा भी भयावह है न जिसका कोट ओर छोर है न जहाज है न नाव है और न कोई मल्लाह है तथा जिसम रहने वाल जल-जतु भी अपन कराल दाता स काटन वाल हैं जहाँ न काइ माता पिता और मित्र हैं न काइ अन्य किसी प्रकार का सहारा ही दन वाला काइ है वहा पर राम ही सहायक हैं—

व ही राम भूमि भार का हरने के लिए नर रूप म अवतार लते हैं तथा धम बद को प्रतिष्ठित करत है। ससार की मगल कामना का व्रत ले लेत हैं और नीति तथा प्रीति का पालना और निभाना भी व बहुत अच्छी प्रकार जानत हैं—

धम के सतु जग मगल क हतु भूमि
भारु हरिबे को अवतारु लियो नर को
नीति औ प्रतीति प्रीति पाल चालि प्रभु मानु
लोक-बद राखिबे को पनु रघुबर को।'

(ख) दानशीलता

दशरथ के दानिशिरोमणि राम की दानशीलता भी अप्रतिम है। जो भी उनके सामने मागने आता है उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। चाहे वह नर हो चाहे नाग हो चाहे सुर असुर हो अपना मनोवाछित उनसे पा जाता है। यह सब वे अपने विरुद क अनुसार ही करते हैं क्योकि उनक यश और उनके दान की गाथा पुराणा म भी प्रसिद्ध है—

दसरत्थ क दानिसिरोमणि राम ! पुरान प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं
नर नाग सुरा सुर जाचक जो तुमसो मनभावत पायो न कैं।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ३८)

राम के समान दूसरा और कोई दानी नही है। इस ससार म राजा दव दानव सर्पा के राजा तपस्वी महर्षि और सिद्धो के गण सभी तो याचना करने वाले है और राम जसे दानी ही उनकी दशा को सुधारने म सहायक बनते है—

'दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी
जग जाचक दानि दुतीय नही तुम्ह सबकी सब राखत बाजी।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ६५)

राम के दान देने वाले हाथ की तुलना कल्पवक्ष स भी नही की जा सकती है जो कि सब प्रकार की कामनाओ की पूर्ति करन वाला कहा गया है। तुलसीदास न एक अतिशय कल्पना का आश्रय लेकर कल्पतरु का चित्रण किया गया है तथा उस कल्पतरु स भी राम के दानी हस्त की श्रष्ठता प्रतिपादित की है। वे कहते हैं कि सुमेरु पवत की तो क्यारी हो उसम सुदर चितामणि रत्न जसा बीज हो उसको कामनाओ की पूर्ति करने वाली कामधनु क विशुद्ध और अमृतमय दुग्ध स सीचा गया हो उससे तीर्थराज प्रयाग अकुर बन करक फूटा हो जिसकी रक्षा का भार कुबर जी पर हो (वक्ष बन जाने पर) जिसकी शाखाए तथा पत्त मरकत मणिमय हो जिसकी मजरी ही लक्ष्मी हो जिस पर फल लगे मोक्ष का ऐसा कल्पतरु स्वभाव स सत्य की वर्षा करने वाला हो तो भीतर वक्ष दानि शिरोमणि राम क हाथ की समता नही कर सकता—

कनक-कुधर केदार बीच सुदर सुरमनि वर
साचि काम धुक धनु सुधामय पय विशुद्धतर
तीरथ पति अकुररूप जच्छेस रच्छ तहि
मरकत मय साखा सुपत्र मजरि सुलच्छि जहि
कवय सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस
कह तुलसिदास रघुबस मनि तौ कि होहि तुव कर सरिस।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ११५)

यहाँ पर तुलसी न रूपक का सहारा लेकर जो वणन किया है वह सुन्दर है तथा राम का अपार दानशीलता का बोध करान वाला है।

(ग) जनानुग्रहशीलता

राम का जना पर, भक्तः पर भी असीम प्रेम है। व उनकी रक्षा करत हैं, सभाल रखत हैं। जो चर अचर स युक्त सारे ससार को देखता भालता है वह भक्ता का क्या नही दखेगा जिन पर कि उसका विशेष अनुग्रह है—

'जन की, कहू क्या करिहैं न समार जो सार करै सचराचर की
—(कविनावली, उत्तरकाण्ड पद ७७)

राम को भक्त इतने प्रिय हैं कि व उनमे प्रसन्न होकर उनके ही हाथा बिक जाते हैं और स्वय 'रिनिया' और 'कजदार' कहलाना पसन्द करत हैं। इस बात की अभिव्यक्ति मानस', दोहावली और 'कविनावली तीना म हुई है—

"मारि मन प्रभु अस विस्वासा
राम ते अधिक राम कर दासा—मानस।"

— — —

'तुलसी रामहुन अधिक राममक्त जिय जानु
रिनिया राजा राम स, धनिक भय हनुमानु।'— दोहावली

— — —

'साखी सवकाद हनुमान की सुजान राय
रिनिया कहाय हौ विकाने ताके हाथ जू।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद १६)

राम अपने जन का प्रण सदव रखत हैं। व उनकी पुकार सुन दौडे दौडे जात हैं और उस समय उन्हें अपनी खडाऊँ तक का भी ध्यान नही रह जाता। दीन जन की तत्काल और अविलम्ब सहायता करके व उनक दुख का दूर करत हैं। प्रह्लाद की पुकार पर वे नरके हरि बनकर आय थ ग्राह ने जब गज का ग्रस लिया ता वे ही उसका छुडान क लिए आए थे द्रौपदी का चीर हरण किए जाने पर उन्होंने ही रक्षा की थी—

प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा प्रकट नरकेहरि खभ महाँ
भयरात गम्यो गजराज कृपा ततकाल विलबु कियाँ न तहाँ
सुर साखि द राखि है पाडु बधू पट लूटत कोटिक भूप जहाँ
तुलसी भजु माच विमाचन का जन को पनु राम न राख्यो कहाँ।
—(कविनावली, उत्तरकाण्ड पद ८)

राम का भक्त पर अनुग्रह एसा है यद्यपि व बहुत बडे हैं सामर्थ्यवान् हैं, सब कुछ उनके लिए सुलभ है परन्तु भक्ता द्वारा दी गई वस्तु का भी बड भाव स अपना लेत है। शबरी के बेर ता प्रसिद्ध ही हैं जिनका खाकर ही राम की भूख मिटी थी—

'ऐत बडे तुलसीस! तऊ सबरी क दिए बिनु भूख न भाजी
राम गरीबनेवाज! भए ही गरीब न वाज गरीबन वाजी।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद १५)

(घ) शरणागतवत्सलता

जो शरण म आता है उसको अभयदान देना और उसकी रक्षा का भार अपन ऊपर लना यह भारतीय सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का पालन मर्यादापुरुषोत्तम राम जिस सुन्दरता क साथ करते हैं वह देखते ही बनता है। जो अनाथ दीन मलीन, आर्त्त उनकी शरण म आता है वे उसको अपना बना लेत है, ऐसा उनका स्वभाव है। तुलसी जस को भी उन्होंने शरण दी और उस सम्माननीय बना दिया। राम के अतिरिक्त शरण दने वाला सम्भवत ही कोइ अन्यत्र मिलेगा—

जातुधान भालु कपि केवट बिहग जो जो
पाल्यो नाथ! सद्य सो सो भयो काम काज को
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए
राख अपनाइ सो सुभाउ महाराज को
नाम तुलसी प भाडो भाग तें कहायो दासु
कियो अंगीकार ऐसे बडे दगाबाज को
साहबु समथ दसरत्थ क दयालदेव
दूसरो न तो सो तुम्ही आपने की लाज को।

—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद १३)

इसी शरणागत वत्सलता क अधीन होकर उन्होंने बदरा तथा भालुओं को अपना मित्र बना लिया और उनको उसी प्रकार पाला जिस प्रकार कि अपन बालको को पाला जाता है अत्यन्त प्रेम और सावधानी से। विभीषण उनकी ही शरण म आकर सज्जन बन गया। कपटी कुचाली, कुपुत्र और कुजातिज जो भी व्यक्ति उनकी पूजा करता है तथा उनको आत्मीय मानता है, उसी की स्थिति सुधर जाती है—

'मीत पुनीत कियो कपिभालु को पाल्यो ज्यो काहु न बाल तनूजो
सज्जन सीव विभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बारबधु को
कोसलपाल कृपालु बिना तुलसी सरनागत पाल न दूजो
कूर कुजाति कुपूत अधी, सबकी सुधर जो करै नर पूजो।'

—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ५)

विपत्ति आ जाने पर तथा शत्रु द्वारा साथ छोड़न पर राम को जितनी चिन्ता शरणागत की रहती है उतनी किसी अन्य की नहीं। युद्ध म अनेका योद्धाओं ने राम क पक्ष म लड़कर वीरगति प्राप्त की परन्तु राम न उनकी चिन्ता भी नहीं की लक्ष्मण को शक्ति लगने पर मूर्च्छा आ गई परन्तु उन्हें उसका भी कोई विशेष मोह न हुआ और सीता क विषय म भी उन्हें सोच न हुआ। यदि किसी का मोह और सोच उन्हें हुआ तो विभीषण का क्योंकि मन म यही बात लग रही कि मैं विभीषण का किसी प्रकार का प्रबन्ध न कर सका। तुलसी दास ऐसे शरणागतपाल की बार बार बलिहारी जाते हैं—

मानी मेघनाद सो प्रचारि भिरे भारी भट
आपने अपन पुरुषारथ न ढील की

घायल लखन लाल लखि बिलखाने राम
भई आस सिथिल जगन्नि वास-दील की
भाई को न मोह छोह सीय को न तुलसीस
कहैं मैं बिभीषन की कछु न सबील की'
लाज बाह बोल की, नवाजे की सँभार सार
साहब न राम से, बलयाँ लेऊँ सील की।'
—(कवितावली, लंकाकाण्ड पद ५२)

विभीषण जैसे शरणागत के विषय में राम बहुत ही आकुल रहते हैं क्योंकि वह उनके शत्रु रावन का बंधु है, उससे लड़कर आया है, पवित्र विचारों का है, और लक्ष्मण के जीवित रहने पर जिसका जीवित रहना भी अनिश्चित है। ऐसे व्यक्ति की राम जैसे शीलस्वभावी रक्षा नहीं करेंगे तो कौन करेगा।

राम की विशिष्टता

दशरथ के राजकुमार राम तथा अन्य राजाओं में यह भिन्नता है कि राजा लोग तो गुणों पर ही रीझते हैं। जो गुणवान् होते हैं राजा लोग उन्हीं का आदर करते हैं। जिस प्रकार कि गुण (रस्सी) से ही कुएँ से पानी निकाला जा सकता है। उसी प्रकार गुणों से ही राजाओं का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है और जिस प्रकार बिना रस्सी के पथिक प्यासे ही चले जाते हैं उसी प्रकार गुणों से रहित आदमी भी राजाओं के यहाँ से निराश्रित होकर चले जाते हैं। परन्तु दशरथ के राजकुमार राम इसके विपरीत हैं। वे गुण विहीनों तथा निकम्मों की जितनी बाँह पकड़ते हैं उनकी अन्य कोई भी नहीं पकड़ता। यही कारण है कि उनकी गीतियाँ और नीतियाँ बड़ी ही पवित्र हैं—

'सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के
लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित
नीकें देखे देवता देवया घने गथ के
गीधु मानो गुरु, कपी भालु माने मीत कै
पुनीत गीत-साके सब साहब समत्थ के
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत
लसम के खसमु तुही पै दसरत्थ के।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड, पद २४)

इस पद में राजा की परख प्रवृत्ति का पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है। अन्तिम दो पंक्तियों में तो उनका रूप बहुत ही स्पष्ट हो जाता है। सातवीं पंक्ति में आये हुए चार शब्द— परखि' 'सुलाखि (सुराखि)' 'तौलि ताइ'— सुनारों की सी प्रक्रिया का प्रमाण भली भाँति करते हैं। जिस प्रकार सुनार पहले सोने को ऊपरी ढंग से *परखते* हैं, फिर उसमें सूराख करके मिली हुई वस्तु को देखते हैं फिर उसको भली प्रकार

तौलते हैं और अंत में उसको तपाकर निश्चित रूप से सच्चेपन का अनुमान करते हैं उसी प्रकार राजा लोग गुणों की परीक्षा करके ही लोगों को अपनाते हैं तथा उचित पद प्रदान करते हैं। परन्तु तुलसीदास ऐसे राजाओं को प्राकृत जन कहकर उनकी निन्दा करते हैं तथा इन प्राकृत जनों के गुण गान से दूर रहने का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं कि जब प्राकृत जनों का गुण गान ही एक मात्र किसी के जीवन का लक्ष्य रह जाता है तो सरस्वती अपना सिर धुनती है और पछताती है कि मेरा उपयोग शुभ कर्म के लिए न होकर अशुभ कर्म के लिये हुआ है क्योंकि यदि मेरा उपयोग भगवान् की विभूति का गीत गान के लिए होता तो मैं धन्य हो जाती और मेरा जीवन सफल हो जाता। तुलसी ने अपने मानस में इस सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया है—

कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।

कवितावली में भी राजाओं के दमड़ीदान की ओर तुलसी ने इस प्रकार का सङ्केत किया है—

'जाँचे को नरेस देस देस को कलेस करें
देहैं तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंडिये।

राम जिसको स्थापित कर देते हैं उसे कोई भी शक्ति अपदस्थ नहीं कर सकती वे जिसको परिपूर्ण बना देते हैं उसे कोई भी अपूर्ण या रिक्त नहीं कर सकता। उनकी कृपा ही सर्वोपरि है क्योंकि उनकी वह कृपा ही सब कुछ करने में समर्थ है। अन्य यदि कृपा न करें तो भी कभी हानि होने की सम्भावना नहीं है—

को भरिहै हरि के रितए रितवै पुनि को हरि जौं भरिहै
उथपे तेहिको जिहि रामु थपै थपिहै तहिको हरि जौ टरिहैं
तुलसी यह जानि हिए अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहैं
कुमया कछु हानि न औरन की जो पै जानकीनाथु मया करिहैं।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ४७)

राम किसी प्रकार की सेवा के इच्छुक नहीं है। वे यदि सेवा चाहते भी हैं तो बहुत ही थोड़ी और उसी पर रीझ जाया करते हैं। जिन लोगों की कृपा भी कुछ काम नहीं बना सकती और न जिनका रुष्ट होना ही किसी आपत्ति का बुलावा बन सकता है उन लोगों की सेवा करना व्यर्थ है तथा उनकी ओर से भयभीत होना भी व्यर्थ है। जो भी ऐसे लोगों की चिन्ता करता है वह मूर्ख है क्योंकि बिना विचारे और किसी लाभ हानि के बिना भी जो पीछे लगा रहता है वह कभी भी उनसे लाभ उठाने का अपना स्वप्न साकार नहीं कर सकता है—

कृपाँ जिनकी कछु काज नहीं न अकाज कछू जिनकें मुखु मोरें
करैं तिनकी परवाहि ते जे बिनु पूँछ बिषान फिरैं दिन दौरें
तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथु समर्थ सुसेवत रीझत थोरें
कहा भवभीर परी तेहि धौं बिचरै धरनीं तिन सो तिनु तोरें।
—(कवितावली उत्तरकाण्ड पद ४९)

जिसने जानकीनाथ से समथ नाथ हैं उसे फिर किसी असमथ नाथ की चिन्ता करने की कोइ आवश्यकता भी नहीं है। वह तो असमथ नाथा स अपना हर प्रकार का सम्बन्ध तोडकर स्वतन्त्र अस्तित्व रख सकता है और उनकी परतन्त्रता से अपने को मुक्त करके स्वच्छन्द रूप से सास ले सकता है।

आकाश, पाताल और पृथ्वीतल पर न जाने कितने लोकपाल और भूमिपाल राजा और स्वामी भरे पड है परन्तु उनम दया और कृपालुता की बहुत ही कमी है इसीलिए उनकी सेवा करना भी कुछ मूल्य नहीं रखता। अगर ऐस नराधम नरपति और असमथ स्वामी सेंतमत या मुफ्त भी मिलें ता भी किसी काम के नहीं। इसक विपरीत दशरथ पुत्र राम इतन समथ हैं कि जिनके अपना लिए जाने पर व्यक्ति को औरों का भी आधीन बना लन का सबल और सहारा मिल जाता है। वास्तव म राम जसा सुजान सामथ्यवान और शीलवान स्वामी और कोई नहीं है—

तेरे बसाहे बसाहत औरनि और बसाहि क बचनिहारे
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप, कूर कुसाहब सतिहु खारे
तुलसा तहि सवत कौन मर, रज तें लघु को कर मर तें भारे
स्वामि सुसील समथ सुजान सो तो सा तुम्ही दसरत्थ दुलारे।

—(कवितावली उत्तरकाण्ड, पद १२)

देवताओ आदि स भी कोशलेन्द्र रामचन्द्र भिन्न हैं। देवता तपस्विया को वर ता दे देत हैं परन्तु जब तपस्वी अपनी दुर्द्धष तपस्या क बल पर देवा की कोटि म जाने का उपक्रम करत हैं तो दव उनस शत्रुता बढान लगत हैं ईर्ष्या का भाव प्रकट करन लगत हैं और मन ही मन कुढने लगत हैं। उनके कोप और कृपा दोना ही साथ साथ चलते हैं। जब इच्छा होती है ता कृपा कर बठत हैं और कभी कुछ आतरिक मलीनता आ जाती है तो कोप कर बठत हैं। उनकी प्रीति भी अल्पकालीन हाती है जिसको वे क्षण भर म समाप्त कर देत है और क्षण भर म स्थापित कर लेते हैं। परन्तु राम का स्वभाव इस प्रकार का नहीं है। वे तो जिसको अपना लेत है उस ऊँचे स ऊँचा पद द डालने म किसी प्रकार की हिचक नहीं करत—

'तापस को बरदायक दव सब पुनि बरु बनावत बाढें
थोरहि कोपु कृपा पुनि थोरेंहि बठि क जोरत तोरत ठाढें
ठाकि बजाई लखे गजराज, कहा लौ कहौं केहि सा रद काढे
आरत क हित, नाथु अनाथ क, रामु सहाय सही दिन गाढें।

—(कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद ५४)

शक्ति

शील का निरुपण करने क उपरान्त अब शक्ति का—राम की अद्भुत परानम शीलता और अतिशय एश्वयशीलता का—निरुपण किया जाता है। कविनावली' तुलसी की एसी काव्य रचना है जिसम कवि न प्रबन्ध की मयादा के बन्धन का अस्वीकार किया है तथा राम की अनुपम सामथ्य के अनके चित्र उपस्थित किए हैं। उनका

लिए यह आवश्यक था कि छन्द भी उसी के अनुकूल प्रयुक्त किये जायें इसीलिए पुरुष भावना की अभिव्यक्ति के लिए राम के पौरुष का प्रदर्शन करने के लिए छप्पय, कवित्त और सवया छन्दों को अपनाया गया है। परुष भावनाओं का जितना इन छन्दों में चित्रित किया जा सकता है उतना दोहा और चौपाई आदि में नहीं। मुक्तक काव्यों में कवितावली ही राम की शक्ति का निर्देशन करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम है। गीतावली' में जहाँ कवि ने राम के सौन्दर्य रूप को अधिक महत्व दिया है वहाँ कवितावली में कवि ने राम के शक्ति-सम्पन्न रूप को महत्व दिया है। सुन्दरकाण्ड तथा लंकाकाण्ड दोनों काण्ड इस कथन की पुष्टि करने में समर्थ हैं। किसी किसी के अनुसार तो 'कवितावली' के प्रारम्भ की प्रथम पंक्ति की 'अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद के भूपति लै निकसे' में आया प्रथम शब्द 'अवधेस' ही यह सूचित करता है कि कवि का ध्यान विशेषतः राजसी वैभव विक्रम की ओर ही अधिक है, जिसमें कवि सफल भी खूब हुआ है। अब उस शक्ति की थोड़ी झाँकी यहाँ पर प्रस्तुत की जाती है।

सबसे पहले सीता स्वयंवर के प्रसंग को लिया जाता है जिसमें कि अनेक राजाओं का समाज जमा हुआ था। अनेक रूपवान और ऐश्वर्यवान नृपगण जिसमें अपने पौरुष से सभी को चमत्कृत करने के लिए एकत्रित हुए थे। वाणासुर तथा बलशाली रावण जैसे दिग्विजयी शूरवीर भी जिसमें अपनी शक्ति व कीर्ति का झंडा गाड़ने के लिए खिंचे चले आये थे उसी में राम ने सब को जैसे पराजित करके शिव धनुष का भंजन किया—

'मयन महनु पुरदहनु गहनु जानि
　　　　आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल
　　　　किये बलहीन बल आपनो बढ़ायो है
कुलिस कठोर कूर्मपीठ तें कठिन अति
　　　　हठि न पिनाकु काहूँ चपरि चढ़ायो है
तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत ही
　　　　टूट्यो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।'
　　　　　　　　　　　—(कवितावली बालकाण्ड पद १०)

विभिन्न पात्रों के द्वारा भी राम की शक्ति का परिचय कराया गया है। ऐसे पात्रों में राम के पक्ष के पात्र अंगद है तथा विपक्ष की पात्री है मंदोदरी जो अपने पति रावण को राम के पराक्रम से अवगत कराती है। यहाँ पर पहले अंगद की उक्तियों को लिया जाता है जिसने राम का दूत बनकर और लंका में जाकर रावण को राम के प्रताप का परिचय देकर उनसे मिलने का उपदेश दिया है। वह रावण को उन बातों की याद दिलाता है जिनके करने से राम के बल को सभी जानने लग गये थे। वह कहता है कि हे रावण! अनेकों राक्षसों—खर दूषण विराध कबंध त्रिशिर—को राम ने मार डाला है बालि—जिसने कि तुझ को छह महीने तक अपनी कोख में दबाये रखा था—को भी उन्होंने ही मारा है तथा जिन्होंने परशुराम यानी मन का मद भी मर्दित

किया है उनके सामने तरी स्थिति एक बहुत ही अल्प मच्छर के समान है जिसको मसलने म उन्हें कोई समय नही लगेगा—

"दूपनु विराधु खर त्रिसिरा कवधु बधे
तालऊ बिसाल बधे कौतुक है कालि को
एक ही बिसिष बस भयो बीर बाकुरो सो
तोहू है विदित बलु महाबली वालि को
तुलसी कहत हित मानतो न नकु सक
मेरो कहा ज है फनु प ह तू कुचालि को
वीर करि केसरी कुठार पानि मानी हारि
तरी कहा चली बिड ! तोसे गन खालिको।'
—(कवितावली, लकाकाण्ड पद ११)

इस (शिव) के भी ईश स वर करना अज्ञान और मिथ्याभिमान है जिसके चूर चूर होन म तनिक भी सदेह नही है, यह सत्य मदोदरी न भी उद्घाटित किया है वह कहती है कि ह नाथ ! आपके दस सिर और बीस बाहु तो उसी समय खण्ड खण्ड हो गइ जब कि आपने भगवान् राम स वर करना प्रारम्भ किया। विरोधी पक्ष की पात्री मदोदरी के मुख स जब राम के लिए भगवत और अपन प्राणप्रिय रावण के लिए नीच शब्द निकलत सुनाई पडत हैं तो निश्चित ही यह विदित हो जाता है कि राम का पराक्रम कितना है और कहा-कहाँ तक फैला हुआ है। समुद्र पार बैठी मन्दोदरी ने राम क विषय म जो सुना था वही तो उसन इस पद म कितनी कुशलता क साथ अभिव्यक्त किया है—

'रे नीच ! मारीचु बिचलाइ हति ताडका
भजि सिव चापु सुखु सबहि दीन्हो
सहस दस चारि खल सहित खर दूपनहि
पठ जमधाम त तऊ न चीन्हो
मैं जो कहौं कत ! सुनु मतु भगवत सो
विमुख ह्व बालि फलु कौने लीन्हो
बीस भुज दस सीस खीस गए तबहि जब
ईस क ईस सो बरु कीन्हो।'
—(कवितावली लकाकाण्ड पद १८)

अन्य कुछ पात्रो के मुख से भी राम के अपरिमेय पराक्रम का वणन या सुना जा सकता है—

'तुलसी सयाने जातुधान पछितान कहैं
जाको एसो दूतु, सो तो साहेबु अब आवनो
काहे को कुसल रोषें राम बामदेवहू की
विषम बलि सो बादि बर को बढ़ावनो।'

'लंका नाहु दसें न उछाहु रह्यो काहुन को
कहैं सब सचिव पुकारि पाव रोपिहैं
बांचिहै न पाछे तिपुरारिहू मुरारि हू के
को है रन रारि को जौं कोसलेसु कोपिहै।'
'मंत्रीगण'—(कवितावली लंकाकाण्ड, पद १)

राम की असीमकृपा के कारण ही उनके सेवक भी बड़े काम कर जाते हैं जिसको देखकर लोग दांतों तले उंगली दबाने लगते हैं और इन्द्र तथा ब्रह्मा जी तक चौंक जाते हैं, चक्रपानि और चंडिका मन ही मन प्रसन्नता मानते हैं। हनुमान जी राम के ऐसे ही सेवकों में से हैं जिन्होंने राम रावण युद्ध में तहलका मचा दिया और राक्षसों की सेना पर उसी तरह से प्रहार करने लगे जिस तरह की मृगराजगजराजजूथ पर विकट चोट करके धराशायी कर देता है। धीर वीर और रण बांकुरे हनुमान के युद्ध-कौशल की विकरालता इस पद में लक्षित है—

"जातुधानावली मत्त कुंजर घटा
निरखि मृगराजु ज्यों गिरि तें टूटयो
बिकट चटकन चोट, चरनगहि पटकि महि
निघटि गये सुभट सतु सबको छूटयो
दास तुलसी परत धरनि धरकत झुकत
हाट सी उठति जंबुकनि लूटयो
धीर रघुवीर को वीर रन बाकुंरो
हाकि हनुमान कुलि कटक कूटयो।
—(कवितावली लंकाकाण्ड, पद ४६)

और सच तो यह है कि जिसकी भकुटि के टेढ़े होने से प्रलय हो जाती है उसको स्वप्न में भी संकट आने की सम्भावना नहीं—

भकुटि बिलास सृष्टि लय होई सपने हु संकट परहि कि सोई

सौन्दर्य

राम-सौंदर्य समन्वित लोचनाभिराम घनश्याम हैं जिनके अवलोकन के लिए सभी लालायित रहते हैं और तुलसी तो उस रूप को अपने मन मंदिर में सदा के लिए स्थापित करके पूजा अर्चा करना चाहते हैं। वे निर्निमेष होकर उस रूप को निहारना चाहते हैं और एक पल के लिए भी इधर उधर नहीं होने देना चाहते हैं। 'कवितावली' में उन्होंने राम की छवि का जो अंकन किया है वह मनोरम और मनोहारी है। राम की छवि का दो रूपों में चित्रण किया गया है। रूप हैं—बाल रूप तथ युवक रूप।

बाल रूप का चित्रण तुलसी ने बालकाण्ड के कुछ ही पदों में किया है। उसमें सूर जैसी मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता, और क्रियाशीलता तो नहीं मिलती परन्तु फिर भी उसमें आकर्षण की शक्ति अवश्य ही विद्यमान है। राम के अंजन रंजित खंजन के समान नयन बड़े ही लुभावने हैं और उनका दिव्य रूप ऐसा है कि जो

भी उसको देखता है वही ठगा-सा रह जाता है। कवितावली' का प्रथम पद ही उनके सौन्दर्य का उद्घाटन इस प्रकार करता है—

'अवधेश के द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगि-सी रही जो न ठगे धिक से
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन, नैन सुखंजन जातक से
सजनी ससि मैं समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे।"

राम का यह रूप तो मन मे बसाने योग्य है क्योंकि उनके पैरो मे घुंघरू बजते हैं, कर कमलो मे पौंची शोभायमान होती है और गले मे मणियो की माला लटकती है। उनका मुख कमल के समान है जिसका पान करने के लिए सभी के नेत्र रूपी भवरे आनंदित होकर मंडराया करते हैं।

उनके दातो की पंक्ति कुंद पुष्प की कली के समान है अमोल मोतियो की माला इस प्रकार चमकती है जिस प्रकार बादलो मे चपला चमकती है, मुख मंडल पर घुंघराली लटें बिखर कर विचित्र विच्छित्त वितरित करती हैं लाल कपोलो पर लोल कुंडल आलोडन करके भावस्वरता की प्रतीति कराते हैं और तोतली बोली पर प्राण न्योछावर किए बिना रहा नही जाता है।

धनुष भंग के अनन्तर तो राम के किशोर रूप को अन्य सखियाँ प्रेम-पयसे पालना चाहती हैं नयनाभिराम राम की आरती उतारना चाहती हैं। जिस किशोर ने कौतुक मे ही पिनाक को तोड दिया और भूप पुंज के प्रताप को परास्त कर के अमित कांति से सबको चमत्कृत कर दिया भला वह किसको प्रिय नही होगा, और कौन उस पर दृष्टि डाल कर अपना लोचन लाभ नही करना चाहेगा—

'लोचनाभिराम घनश्याम रामरूप सिसु
सखी कहै सखी सो तू प्रेम पय पालि, री
बालक नृपाल जू के ख्याल ही पिनाकु तोर्यो
मंडलीक मंडली प्रतापु दापु दालिरी
जनक को, सिया को हमारो तेरो तुलसी को
सब को भावतो ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री
कौसिला की कोखि पर तोपि तन वारिये री
राय दसरत्थ की बलैया लीजे आलिरी।'
—(कविता० बाल० पद० १०)

युवक रूप राम का वह रूप है जबकि राम लक्ष्मण और सीता के साथ वन गमन करते हैं तथा मार्ग निवासी और मार्ग निवासिनियों के नेत्रो के अवलम्बन बनते हैं। ग्राम-वधूटियाँ तो सीता जी से उस सावले सलोने के बारे मे पूछ ही बैठती है जिसके सिर पर जटाजूट है, जिसकी भुजायें तथा वक्षस्थल विशाल हैं, जिसके नेत्र रक्तिम हैं, जिसने धनुष-बाण तथा तरकस धारण किया हुआ है तथा जिसकी वक्रभवें हैं—

सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं

सादर बारहिं बार सुभायँ, चित तुम्ह त्यो हमरो मनु मोहैं
पूछति ग्रामवधू सिय सा कहौ सावरे से, सखि रावरे को हैं।

—(कविता० अयोध्या० पद० २१)

विपिन विहारी राम का वह चित्र तो बहुत ही सुदर है जब कि वे एक नवोदित वक्ष की डाल को भुकाय हुए खडे हैं तथा धनुष वाण भी लिए हुए हैं। उस समय उनके सांवले शरीर पर पसीने की बूदें उसी प्रकार भलभला रही हैं जिस प्रकार कि प्रगाढ अधकार मे आकाश मे तारागण चमकते हैं—

ठाढे हैं नवद्रुम डार गहें
धनु काँधे धरें कर सायकु ल
विकटी भकुटी बडरी अंखियाँ
अनमोल कपोलन की छवि है
तुलसी असि मूरति आनि हिएँ
जड! डारु धौं प्रान निछावरि कै
श्रमसीकर सांवरि देह लस
मनो रासि महातम तारक मैं।

—(कविता० अयोध्या० पद० १३)

राम का रूप ही ऐसा है कि जिसपर कोटि कोटि कामदेवो की कामनीयता भी यदि वारी जाय तो उसे अ त म लज्जित होना ही पडेगा। उनके कोमल कमनीय कल वर को लखकर घटाम्रो का गव भी खव हो जाता है—

'सावरे विलोकें गव घटति घटनि क'

ऐस ही राम त्रिलोक के तिलक है जि ह देखकर नर और नारी सभी जन टक टकी लगा जाते हैं और उनकी दशा उस समय वसी ही हो जाती है जसी कि चित्र शाला के चित्रो की हुआ करतीहै जो न तो हिल सकत हैं और न हिल सकत हैं अपितु मूक और निर्वाक ही रह सकते हैं। एस भूप क कुमार को देखत ही मन वचन और काय एकाग्र और स्थिर हो जाते हैं तथा चित्त उनके साथ ही चमत्न क लिए उद्यत हो जाता है। निश्चय ही एसे राजकुमार को आँखो म यदि किसी ने न रखा तो उसने रखा ही क्या ?

आखिन म सखि! राखिव जागु
इ हैं किमि क वनवासु दियो है।

—(कविता० अयोध्या० प० २०)

कवितावली का काव्यरूप

प्रधान रूप से काव्य रचना की दो शैलियाँ प्रचलित हैं—प्रबन्ध शैली और मुक्तक शैली (जिसे निर्बन्ध शैली भी कहा जाता है)। इस नानारूप जगत् में न कभी समानता हुई है और न कभी होनी सम्भव है क्योंकि हर पुरुष अपने आप में एक अलग इकाई है जिसको भगवान् ने अपनी छाप लगाकर इस संसार में भेजा है। कोई दुर्लभ कार्यों को करने का उपक्रम करता है और उस में सफल भी हो जाता है। कोई महान् कार्यों को करना चाहता है, परन्तु अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उसे सम्पन्न नहीं कर सकता। वह अपने कार्य को अन्तिम रूप में परिणत कर ही नहीं पाता है और अतृप्त तथा असंतुष्ट-सा ही रह जाता है। यह सब विधि का खेल है। वह जैसे चाहता है वैसे नाच नचाता है। यह सब कहने का तात्पर्य यही है कि भिन्न भिन्न रुचियों वाले व्यक्ति भिन्न भिन्न कार्य करते देखे जाते हैं। काव्य रचना भी एक कार्य है और इसमें भी कार्यों की श्रेणियाँ हैं। जो दुर्लभ कार्य करता है वह प्रबन्धकाव्य (महाकाव्य आदि) की रचना कर लेता है और जो सुगम मार्ग अपनाकर कार्य करना चाहता है, वह मुक्तक काव्य की (गीत या पद) रचना कर लेता है। किसी किसी में दोनों ही प्रकार के कार्यों को करने की क्षमता होती है और वह प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही शैलियों में काव्य रचना सरलता से कर सकता है। यह भी प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य प्रकृति भी इसमें बहुत कुछ हाथ बटाती है। कोई तो एक क्षण के लिए बन्धन को स्वीकार नहीं करता, फिर वह बंध कर प्रबन्ध कैसे लिख सकता है। उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने वाले सदैव ही मुक्तक में रचना किया करते हैं, क्योंकि वह उनकी प्रकृति के अनुकूल पड़ता है। तुलसीदास इसी तीसरी श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों में से एक हैं जिनकी प्रतिभा दोनों ही रूपों में प्रस्फुटित हुई है। उन्होंने अपने को एक ही वर्ग तक सीमित नहीं रखा है। तुलसी ने रामचरितमानस की रचना प्रबन्ध शैली में की है और विनयपत्रिका, गीतावली, कृष्णगीतावली और कवितावली आदि की रचना मुक्तक शैली में हुई है।

काव्य की समता वृक्ष से की गई है क्योंकि जिस प्रकार वृक्ष की अनेक शाखाएँ प्रशाखाएँ हुआ करती हैं उसी प्रकार काव्य की भी विधाएँ प्रविधाएँ हुआ करती हैं। ऊपर जो प्रबन्ध और मुक्तक की चर्चा की गई है वह भी काव्य की विधाओं के अनुसार ही की गई है। नीचे काव्य-वृक्ष दिया जाता है जिससे काव्य के विभिन्न रूप सरलता से समझ में आ सकेंगे।
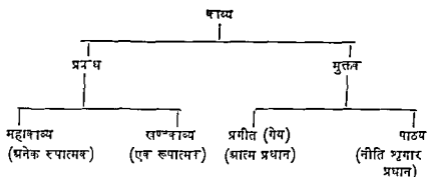
'कवितावली' प्रबन्ध या मुक्तक म से क्या है, इसको बतलाने के पूर्व प्रबन्ध क्या है मुक्तक क्या है, और दोनों म भेद क्या है इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि इन पर विचार किए बिना कवितावली के काव्य रूप का निर्णय करना और निश्चित मत देना सम्भव नहीं हो सकेगा।

प्रबन्ध म प्राय महाकाव्य की विशेषताएँ अन्तर्भूत हुआ करती हैं क्योंकि महाकाव्य एक प्रकार से प्रबन्ध ही हुआ करता है। इसलिए जो भी गुण महाकाव्य के मान गए हैं य प्रबन्ध काव्य के भी लगभग लगभग स्वीकार किये गए हैं। यह भी सत्य है कि महाकाव्य का प्रबन्ध काव्य होना अत्यन्त आवश्यक है और यदि वह इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं करता तो उसकी प्रबन्धात्मकता मे बाधा आती है और वह अपने लक्ष्य से च्युत हो जाता है। अब प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं को एक एक करके नीचे दिखालाया जाता है—

(१) प्रबन्ध काव्य म कथा धारा प्रवाह की तरह आदि से अन्त तक चलती रहती है और प्रसग आपस म अनुस्यूत होते हुए और शृंखला की कड़िया मिलाते हुए एकाकार हो जाते हैं।

(२) प्रबन्ध काव्य समग्र जीवन के चित्र को उपस्थित करता है। अत उसका पृष्ठाधार विराट और व्यापक होता है। उसम अनेक घटनाओ और अनेक क्रिया-कलापों को विस्तार मिलता है।

(३) प्रबन्ध काव्य म कथा का निर्वाह करना जितना आवश्यक होता है उतना हृदय को खोलकर दौड़ना और भागना आवश्यक नहीं। उसम स्वतन्त्रता भी अधिक नहीं मिल पाती, क्योंकि ज्योंही स्वतन्त्रता का आश्रय लिया जायेगा वसे ही गति म स्खलन आना अवश्यम्भावी हो जायगा। सम्बन्ध सूत्रों को मिलाना उन्हे वांछित विस्तार देना, उनकी गतिरुद्धता को भी मिटाते चलना आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनका कवि को ध्यान रखना पड़ता है।

(४) प्रबन्ध काव्य म पुनरावृत्ति के लिए कोई स्थान नहीं होता है। ऐसा करने से जहाँ कथा म तारतम्य रहता है वहाँ पिष्टपेषण का भी दोष नहीं आ पाता। उसम घटनाओं और वर्णनों के उल्लेख की पहल स ही इतनी अधिकता रहती है कि पुनरुक्ति का अवसर ही नहीं आने पाता।

(५) प्रबन्ध काव्य म सम्ब ध सूत्रा को पिरोया जाता है जिसके कारण बहुत सी अनावश्यक कथाओ का आ जाना स्वाभाविक हो जाता है। इसम उसम गुण की अपेक्षा दोष ही आता है क्योकि अनावश्यक प्रसग आ जान से कथा की रुचिता भग हो जाती है और पाठक भी उनको अनावश्यक समझकर महत्व नहीं देता और न उन्हें रस मग्न करन म सहायक समझता है। इसको हम रस बाधा भी कह सकते हैं।

(६) प्रबन्ध काव्य म छन्दा का भी अपना निजी महत्व है। उसम छन्दा का प्रयोग नियम के अनुसार ही करना पडता है। बार बार छन्द उसम बदला ही नही जाता। एक सग या एक काण्ड म एक ही छन्द के चलने का नियम है। हा अन्त मे छन्द परिवतन करन के लिए विधान तो है पर आवश्यक नही है। छन्दा का जमघट लगाना प्रबन्ध काव्य के मूल्य को घटाना है क्योकि पग पग पर छन्दा के परिवतन से कथा क्रम और निरन्तरता मे शिथिलता आ जाती है, जो कि प्रबन्ध काव्य के लिए उचित नही है।

(७) प्रबन्ध काव्य की रचना महान् उद्देश्य को लेकर की जाती है। उसका नायक या प्रमुख पात्र अनेको कठिनाइयो का सामना करता हुआ भी अन्त म विजय को वरण करता है और अपन पीछे महान् सदेश छोड जाता है। प्रबन्ध काव्य की महती विशेषता यह है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उस तक पहुचने के लिए काव्यकार ऐसे प्रसगो की उद्भावना करता है जो सावजनीन और सावकालिक हुआ करते हैं। उनके आने से कृति की चिरतनता म वद्धि होती है। कृति महान् तभी कहला सकती है, जब कि उसका उद्देश्य महान् हो उसम जीवनी शक्ति और शाश्वतता के लक्षण विद्यमान हो।

(८) प्रबन्ध काव्य की कथा का विभाजन भी सर्गो या काण्डो आदि म हुआ करता है और उसम काण्डो या सर्गो के नाम क आधार पर ही वणन भी हुआ करता है। यह भी एक प्रकार का बन्धन है जो कवि को उच्छ खल नही होने देता है।

(९) प्रबन्ध काव्य विषय प्रधान (Objective) होता है। उसम कवि की दृष्टि बाह्य जगत् पर जितनी अधिक रहती है, उतनी अन्तजगत पर नही। यही कारण है कि प्रबन्ध काव्य वणन प्रधान भी हुआ करता है। उसमे प्राय प्रात मध्याह्न सध्या सूय, चन्द्र दिवस रात्रि उषा वन पवत, नदी नद समुद्र यात्रा ऋतु युद्ध और मृगया आदि अनेको वणनो म कवि उलझ जाता है और अपन को विस्मृत सा कर बठता है। यद्यपि यह सम्भव नही है कि कोई कवि आत्म का आख्यान न कर परन्तु प्रबन्ध काव्य के वातावरण म अपेक्षाकृत समष्टि की चिन्ता क कारण व्यष्टि की चिन्ता गौण अवश्य ही हो जाती है इसम कोई भी सदेह नही है।

(१०) प्रबन्ध काव्य म चरित्राङ्कन का भी महत्व असन्दिग्ध है। उसम पात्रो के चरित्रो को उभारा जाता है और उन्ह अन्तिम सोपान पर पहुचने का अवसर दिया जाता है। उनक स्वाभाविक विकास का अवसर भी प्रबन्ध काव्य म ही मिला करता है। जीवन क विविध पक्षो का उद्घाटन करन वाल प्रबन्ध काव्य म पात्र भी जीवन के सभी क्षेत्रो स प्राप्त हैं और उनकी स्थिति का परिचय करात हैं। नाना प्रकृति के

नाना पात्र नाना प्रकार की नवीनताओं के साथ विराट रंगमंच पर आकर और विविध रंग रूप दिखाकर अभिनय किया करते हैं।

मुक्तक का स्वरूप

मुक्तक का शाब्दिक अर्थ है मुक्त या स्वतन्त्र करने वाला। मुक्तक रचना से तात्पर्य है अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाली रचना। मुक्तक में पूर्वापर का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता परन्तु वह रसास्वादन कराने में पूर्ण रूप से सशक्त होता है। ध्वन्यालोककार ने मुक्तक की ऐसी परिभाषा दी है—

पूर्वापर निरपेक्षापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्

मुक्तक की रसालता भी आनन्दवर्धनाचार्य को मान्य है। उन्होंने कहा है कि मुक्तक में भी कवि का ध्यान रस की प्रतिष्ठा पर अधिक रहता है—

तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिन कवेः तदाश्रयमौचित्यम्

आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में अनिबद्ध रचना को मुक्तक और निबद्ध रचना को प्रबन्ध की संज्ञा दी है—

अनिबद्ध मुक्तक निबद्ध प्रबन्धरूपमिति प्रसिद्ध

हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने (हिन्दी साहित्य का इतिहास के पृष्ठ २४७) पर प्रबन्ध और मुक्तक की चर्चा करते हुए कहा है मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के छींटे पड़ते हैं जिससे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्धकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से वह सभा समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्र मुग्ध हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है।

प्रबन्ध और मुक्तक के स्वरूपों को जानने के उपरान्त उनके अन्तर का उल्लेख करना आवश्यक है जिससे कवितावली की मुक्तकता पर भी यथेष्ट रूप से विमर्श किया जा सके।

(१) प्रबन्ध में विस्तार बहुत होता है जब कि मुक्तक की संक्षिप्तता निर्विवाद है।

(२) प्रबन्ध काव्य में सानुबन्ध चित्रण होता है जब कि मुक्तक में पूर्वापर का सम्बन्ध रखा ही नहीं जाता। सम्बन्ध विच्छिन्नता उसका सहज गुण है।

(३) प्रबन्ध काव्य में यदि रस की धारा को बहाने के लिए मार्ग प्रशस्त और उन्मुक्त है तो मुक्तक में भी इसका फव्वारा चलता रहता है और उसके सरस

कणा के कारण वातावरण भी स्निग्ध बन जाता है ।

(४) प्रबन्ध काव्य का प्रभाव अमिट और चिरकाल तक स्थिर रहने वाला है तो मुक्तक का प्रभाव क्षणिक और सद्य प्लावित करने वाला होता है ।

(५) प्रबन्ध काव्य मे प्रत्यक पद अन्यान्याश्रित (Inter related) हुआ करता है, जबकि मुक्तक का प्रत्यक पद मुक्त और अपने आप म इतना पूर्ण होता है कि उसे अन्य की सहायता ही नही लेनी पडती ।

(६) प्रबन्ध काव्य के प्रवाह मे ककर ककर ही बना रह जाता है जब कि मुक्तक म ककर भी शकर बनने का प्रयत्न करता है या मुक्तक म ककर के लिए स्थान ही नहीं है, वहाँ पर कवि की दृष्टि ककर का शकर बनाने पर ही अधिक रहा करती है ।

कवितावली एक मुक्तक रचना

शृंगार में कवि का ध्यान रस [illegible] प्रसंगों की अवतारणा में अधिक रमता है। यह रस का पर्याप्त [illegible] देता है जिससे रसिकजनों के मन पाठक [illegible] को रसमग्न हो जाते हैं। कवितावली में भी कवि का शृंगार रस की ओर अधिक है और इसके प्रसंगों में उसने रस को उँडेला है। पहला ही पद रस की अभिव्यक्ति का सरस ज्ञान पड़ता है —

'अवधेस के द्वारे सकारें गई सुत गोद के भूपति लै निकसे
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक-से
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।

इसमें वात्सल्य की बड़ी अपूर्व झाँकी प्रस्तुत की है। कवि स्वयं एक सखी के रूप में राम की मोहिनी मूर्ति को देखकर मधुरामृत का पान करना चाहता है। उस मूर्ति के रूप लावण्य पर वह लट्टू हो जाता है और अपनी सुध बुध खो बैठता है। वह उसकी साँवली सलोनी और जनमन रंजिनी नयन-नीलिमा में बँध जाता है और फिर कभी भी उससे अलग होने की बात ही नहीं सोचता। सोच विमोचन का एक बार अवलोकन उसके लिए निरंतर का अवलोकन बन जाता है। राम के आनन की रूपमा धुरी कवि के अन्तर के सिंचन के लिए मधुस्रोत बन जाती है। सखी के रूप में कवि ने कितना रस ग्रहण किया है इसका अनुभव सहृदय जन ही कर सकते हैं। रस में या आनन्द नद में डूब कर फिर शीघ्र ही उभरना सरल नहीं होता इस सत्य को भी हम यहाँ पर प्रत्यक्षीकृत देखकर विमुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते।

शृंगार रस को तुलसी ने अपने प्रबन्धकाव्य 'मानस' में बचाया है परन्तु कवितावली में ऐसी बात नहीं है। यहाँ पर तो शृंगार की धारा खूब बही है। एक चित्र राम और सीता के विवाह का यहाँ दिया जाता है—

'दूलह श्री रघुनाथु बने, दुलही सिय सुंदर मन्दिर माहीं
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, बेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं
राम को रूपु निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं।

यह चित्रण है तो मर्यादित ही परन्तु बहुत ही सजीव और आकर्षक है। दुलहिन सीता अपने पति के रूप पर बलिहारी हो जाती हैं और न जाने कितनी कल्पनाएँ भावी दाम्पत्य जीवन के विषय में उनके मन में उठ बैठती हैं। अपने अन्तर के तूफान को सीता जी दबाने में असमर्थ हैं। दाम्पत्य जीवन में मिलने वाले सुख और स्नेह ने

सीता को भावनाओं के वारिधि में डूबने का अवसर प्रदान किया है। पति की प्रथम झलक ही पत्नी के जीवन में ज्योति जगमगा देती है यह हम सीता की विस्मृत चेतना में देख सकते हैं। संयोग शृंगार के अनेक ऐसे ही उदाहरण उपस्थित करके कवि ने पाठकों को मनोरंजन और रसास्वादन कराया है। वात्सल्य और शृंगार के अतिरिक्त वीर भयानक और वीभत्स रसों के उदाहरणों से सुन्दरकाण्ड व लंकाकाण्ड भरे पड़े हैं। कथा का सहारा लेकर वास्तव में रसों के सीकरों के द्वारा स्निग्ध और मुग्ध करने का कवि का प्रयास सराहना के योग्य है।

मुक्तक में कवि को रमणीय राजमार्ग पर विहार करने के लिए उचित और अधिक समय मिल जाता है। वह बंधनहीन होकर विचरण करता है और सुहावनी लुभावनी दृश्यावलियों का दर्शन अपने पाठकों को कराता है। वह उसी विषय का स्पर्श करता है जिसमें उसका मन रमता है और जिनमें अन्यों को भी रमाने की अद्भुत शक्ति होती है। वह मर्यादा का मापक मानदण्ड खंडित कर उद्दाम मैदान में आकर ही सांस लेता है और सब प्रकार से स्वतन्त्र होकर हर्षोल्लास की सृष्टि करने में समर्थ हो जाता है। तुलसी जैसा मर्यादावादी कवि भी कवितावली के उन्मुक्त क्षेत्र में आकर जब मर्यादा की लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण कर जाता है तब अन्य कवियों के विषय में तो कुछ कहा नहीं जा सकता। अयोध्याकाण्ड के २२ व २३ पद इसी सत्य को प्रकट करते हैं।

ग्रामीण युवतियों ने जो मर्यादा भंग करने का दृढ़ संकल्प किया है उससे तुलसी की मर्यादाहीनता का भी हमको पता लग जाता है।

पुनरुक्ति भी मुक्तककाव्य में प्रायः हुआ करती है। सूर के 'सूरसागर' में एक ही प्रसंग की पुनरुक्ति बार बार की गई है। यह पुनरुक्ति इसलिए होती है कि कवि का मन नहीं भरता है, जब वह एक ही बात को बार बार कहता है। इसीलिए वह अधिक सुन्दरता और मार्मिकता लाने के लिए प्रसंगों को दुहराता है। दुहराने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें नीरसता का समावेश हो जाता है। मुक्तककार की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि बार बार एक ही वस्तु को दुहराकर भी उसमें नवीनता और सजीवता का रंग लाता है। उसकी शब्द योजना उसकी अभिव्यक्ति भंगिमा और उसकी सरसता को लाने वाली अद्भुत शक्ति ही अनूठापन लाने के लिए उत्तरदायी हुआ करती है। 'कवितावली' में भी कवि के पास कुछ गिने चुने प्रसंग हैं—बाल-वर्णन धनुर्भंग, केवट पादप्रक्षालन, वन गमन लंका दहन राम रावण युद्ध प्रभु गुणगान और आत्म दैन्य और युग चित्रण—जिनको लेकर उसने काव्य का कलेवर सजाया है। एक एक प्रसंग को कई पदों में भी दुहराया है परन्तु नीरसता का नाम नहीं। सर्वत्र सरसता ही बरसा रहा है। प्रसंग के दुहराने की तो बात अलग है पंक्तियाँ तक दुहराई गई हैं जैसे—

अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं

बाल-वर्णन में यह पंक्ति दो बार दुहराई गई है। इसी प्रकार अन्य पंक्तियाँ भी—

'राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाऊ की नाइं।'

भावों को किस प्रकार मुक्तक में दुहराया जाता है इसको भी दो साथ चार पदों को देकर स्पष्ट किया जाता है। पद राम सीता और लक्ष्मण के सौन्दर्य सम्बन्धी हैं जिनमें मिलती जुलती बातें ही व्यक्त की गई हैं—

जलज नयन जल जान जग हैं सिर
 जौबन उमग अग उदित उदार हैं
सावरे-गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी
 मुनिपट धारें उर फूलनि के हार हैं
करनि सरासन सिलीमुख निषग कटि
 अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि
 रहे नर नारि ज्यो चितेरे चित्रसार हैं—(अयोध्या० १४)

तथा— आगे सो है सावरो कुवर गोरो पाछें पाछें
 पाछे मुनि बेप धरें लाजत अनग हैं
बान बिसिषासन बसन बन ही के कटि
 कसे हैं बनाइ नीके राजत निषग हैं
साथ निसिनाथ मुखी पाथनाथ नन्दिनी-सी
 तुलसी बिलोकें चितु लाइ लेत सग है
आनद उमग मन, जौबन उमग तन
 रूप की उमग उमगत अग अग है।
 —(अयोध्या० पद० १५)

दोनों पदों का यदि मिलान किया जाय तो भावों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर यदि है तो शब्द परिवर्तन का और अभिव्यक्ति भगिमा का ही। सावरे गोरे शब्द दोनों ही पदों में एक से हैं मुनि पट और मुनिवेश में शब्द-परिवर्तन ही है पहले पद में यदि सरासन सिली मुख है तो दूसरे में बान बिसिषासन है जिसमें अर्थ का कोई भेद नहीं हैं। पहले में यदि निषग कटि है तो दूसरे में 'नीके राजत निषग है तथा बसन बन ही के कटि कसे है बनाइ है। जौबन उमग अग उदित उदार है को विस्तार दे दिया गया है इस रूप में आनद उमग मन जौबन उमग तन रूप की उमग उमगत अग अग है। तुलसी बिलोकि चितु लाइ लेत सग हैं की बात कुछ अधिक सुन्दरता के साथ पहले पद की अन्तिम दो पक्तियों में बतला दी गई हैं। यह सब दिखलाने का अर्थ यही है कि मुक्तक में पुनरुक्ति होती है परन्तु नीरसता नहीं आने पाती। उक्त पदों में जो सरसता है वह देखते ही बनती है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पुनरुक्ति का पता ही नहीं चल पाता फिर नीरसता के आ जाने का प्रश्न तो उठना ही नहीं। इसी प्रकार से अनेक स्थलों को उदाहृत करके यह पुनरुक्ति दिखलाई जा सकती है। यहाँ न उसके लिए अवकाश है और न आवश्यकता ही है।

प्रबन्ध में जसी कथा की धारा बहती है वसी कवितावली में देखने को नहीं मिलती। यद्यपि कवितावली मे मानस की तरह सात काण्ड हैं परन्तु किसी किसी

काण्ड म कथा बिल्कुल भी नही हैं अरण्यकाण्ड तथा किष्किधाकाण्ड मे एक एक ही पद है जिससे न तो कथा की शृंखला मिलती है और न किसी प्रकार के तारतम्य का ही ज्ञान हो पाता है। उत्तरकाण्ड तो शुद्ध मुक्तक है यद्यपि उसमे पूर्वापर का कोई सम्बन्ध नही है और न कथा का स्पष्ट किया गया है। सभी काण्डो म बीच बीच म आने वाले प्रसगो की अवहेलना की गई ह और कही कही पूर्व तथा उत्तर-कथा का उल्लेखमात्र कतिपय पदो म किया गया है। एक कथा के बाद दूसरी को लाने का ध्यान किए बिना लम्बी लम्बी छलागें ली गई हैं और पीछे की कथा का मुडकर भी नही देखा गया है। इस प्रकार कथा की दृष्टि से भी, सातो काण्डो के होते हुए भी प्रबन्ध की तरह लगते हुए भी, 'कवितावली' मुक्तक रचना ही ठहरती है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने ऐसी ही अनियमितताओ को देखकर अपने (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) म इसे स्पष्टत एक 'सग्रह ग्रथ' माना है और प० सुधाकर द्विवेदी का यह कथन भी दिया है कि तुलसीदास के भक्तो ने बहुत से कवित्त और सवये जो तुलसीदास न समय समय पर लिखे थ, कवितावली म सकलित कर दिए हैं, जिनका राम कथा से कोई सम्बन्ध नहा है। ऐसे छन्द अधिकतर उत्तरकाण्ड म ही हैं। सीतावट वर्णन कलियुग की अवस्था बाहुपीर रामस्तुति गोपिका उद्धव-सवाद हनुमानस्तुति जानकी स्तुति आदि एस ही स्वतन्त्र सदर्भ हैं।' उत्तरकाण्ड का अनावश्यक और अनुपात रहित विस्तार भी इस ग्रथ को मुक्तक सिद्ध करने के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है।

प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक म कवि आत्माभिव्यजन सरलता से कर लिया करता है। प्रबन्ध म बहुत कुछ पराया ही कहा जाता है इसके विपरीत मुक्तक म अपना भी कहने का वह पूर्ण साहस कर सकता है। प्रबन्ध म आत्माभिव्यजन न होता हो ऐसी भी बात नहीं है परन्तु जहाँ तक शुद्ध आत्माभिव्यक्ति का प्रश्न है मुक्तक ही उपयुक्त रहता है। इसम कवि आप बीती को जग-बीती बनाकर अपने लक्ष्य म सफल हो जाता है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि 'मानस' म उतनी आत्माभिव्यक्ति नहीं है जितनी कि 'कवितावली' मे। तुलसी ने इस ग्रथ के 'उत्तरकाण्ड' म अपनी गाथा ही गाई है और प्रभु की भी, जो प्रशस्ति है उसम भी आत्म प्रकटीकरण हुआ है। तुलसी न अपने जीवन की जो व्याख्या की है जो मार्मिक वेदना व्यक्त की है उसको पढकर ऐसा लगता है कि उनकी वेदना ही फूट-फूट कर पदो म ढल गई है। उस गाथा को तुलसी ने अपने रक्त स ही लिखा है और कविवर जायसी के शब्दो को उधार लेकर कहा जाय तो कह सकते हैं कि तुलसी ने भी अपने रक्त की लेई से उस मर्मव्यथा को जोडा है जो कि आद्यन्त उनके जीवन को निरानन्द और निरादृत बनाती रही। 'जोरीलाइ रक्त क लेई' वाली उक्ति शत प्रतिशत तुलसी के विषय म भी सत्य है, कूट सत्य है और ध्रुव सत्य है। एक उदाहरण देखिए —

'जाया कुल मगन बधावनो बजायो सुनि
भयो परितापु पापु जननी-जनक को
बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को

तुलसी सो साहेब समथ को सुसवकु है
सुनत सिहात सोचु विधिहू गनक को
नामु राम ! रावरो सयानो किधों बावरो
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को।

क्या प्रबन्ध म इस प्रकार का वणन समव है ? कदापि नही, और फिर एक ही पद हो यह भी नही, यहाँ तो अनेक पद मार्मिक वदना को ही व्यक्त करते हैं।

मुक्तक म प्रत्यक छन्द स्वतन्त्र होता है और स्वत पूण होने के कारण वह चमत्कृत भी भलीभाँति कर देता है। कवितावली म भी इस प्रकार की स्वतन्त्रता है और पद भी अपने अलग अलग रूप म पूण हैं। कहीं-कहीं पर वार्तालाप क आ जाने स या कथा वहन स मुक्तत्व म बाधा अवश्य आ गई है क्योकि कवितावली इति वत्तात्मक मुक्तक है। इसलिए ऐसी बाधा कोई विशष बाधा नही मानी जा सकती। हाँ दोष तो अवश्य दोष रहेगा। यथाथ म तो मुक्तक का यह गुण कविवर विहारी क दोहा म अधिक देखा जा सकता है, क्योकि वहाँ पर प्रत्यक दोहा स्वतन्त्र और स्वत पूण है। कवितावली म तो कुछ विशष प्रसग भी हैं जिनम कथा को वहन की प्रवत्ति भी देखी जा सकती है।

प्रबन्ध म विस्तार अधिक होता है तो मुक्तक म सक्षिप्तता। यह सवमान्य सिद्धान्त है कि मुक्तक की यही सक्षिप्तता उसकी प्रसिद्धि का एक प्रमुख कारण है। सक्षिप्त होन के कारण उसमे कसावट अधिक होती है और उसकी गरिमा भी उसी से बढ जाती है। कवि के लिए यह बन्धन भी है कि बात को सक्षिप्त रूप म कस कह ! परन्तु वह ऐसी सामग्री उस सक्षिप्त रूप मे ही भर देना चाहता है जो सबको मोहित और आनन्दित कर ले। 'विस्तार के अभाव म प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो जाती है उसम लता के समान फलन की सामथ्य ही नही। सागर को गागर म भरन का कठिन उत्तरदायित्व मुक्तककार ही निभा ले जाता है। मानस' म कवि ने जहाँ हर एक घटना को विस्तार दिया है वहा कविता वली म उसने उन्ही को सक्षिप्त कर मनोरजक बनाने का प्रयत्न किया है। धनुप यज्ञ प्रसग तथा लक्ष्मण परशुराम सवाद मानस म विस्तार लिए हुए हैं जबकि यहाँ पर उन्ह सक्षिप्त कर दिया गया है। केवट का प्रसग यहाँ सक्षिप्त है और सुन्दर भी है। वन माग का प्रसग भी सुन्दर है पर मानस म इससे अधिक सुन्दरता है। यह आवश्यक नही है कि इति वत्त को लेकर चलने वाले मुक्तक म सभी प्रसग प्रथम श्रेणी के ही हो कुछ प्रसग अवश्य ही सुन्दर हो सकते है मुक्तक म और कुछ अवश्य ही सुन्दर हो सकते हैं प्रबन्ध म। स्फुट दोहा और श्लोको म निश्चित ही कवि लावण्य लाता है और उसके लिए प्रयत्न भी करता है जिससे कि उसका प्रत्यक दोहा या प्रत्येक श्लोक मोती की तरह दमक उठ और वातावरण म ज्योति विकीण कर सके। इसी को लक्ष्य करके आनन्दवधनाचाय ने कहा है कि सस्कृत कवि अमरुक के शृगार रस भरित श्लोक (मुक्तक) प्रबन्धो की तरह प्रतीत होते हैं और प्रसिद्ध भी हैं—

'अमरुकस्य कवेर्मुक्तका शृगाररसस्यन्दिन प्रबन्धायमाना प्रसिद्धा एव

'कवितावली' को मुक्तक सिद्ध करने वाले अन्य प्रमाणों में एक यह भी है कि न तो इसमें प्रस्तावना ही है और न मंगलाचरण ही। 'मानस' में तुलसी ने प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में श्लोकबद्ध मंगलाचरण किया है, परन्तु 'कवितावली' में मंगलाचरण प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में तो है ही नहीं ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी उसका नाम तक नहीं है। मंगलाचरण अमंगल के नाश के लिए और मंगल की प्राप्ति के लिए किसी इष्टदेव के प्रति किया जाता है क्योंकि वह 'मंगल भवन अमंगल हारी' होता है। कहीं-कहीं निर्विघ्न समाप्ति के लिए भी मंगलाचरण किया जाता है। 'कवितावली' में किसी भी प्रकार के लिए मंगलाचरण नहीं किया गया है। तुलसी जैसा परम्परावादी कवि मंगलाचरण को लिखने में कैसे भूल कर गया समझ में नहीं आता, जबकि अन्य मुक्तकों में उसने किया है।

'कवितावली' में भरत की कथा भी कवि ने नहीं कही है। भरत सम्बन्धी कोई ऐसा प्रसंग कवि ने नहीं उठाया है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि कवि को भरत के चित्रण में भी रुचि है। भरत का त्याग राम-कथा में प्रसिद्ध है, क्योंकि राम लक्ष्मण और सीता के वन गमन के बाद वे त्यागी का रूप बनाकर नन्दिग्राम में रहे थे और अपने भाइयों के वनवास की सूचना पाकर अग्रज राम से मिलने के लिए भी गये थे। तुलसी ने 'मानस' में जिस भरत की त्यागशीलता का परिचय दिया है उस, के गुण को 'कवितावली' में विस्मृत ही कर दिया है। केवल दो स्थलों पर भरत का नाम भर आया है—

कहै मातु भैया कहौ मैं न भैया भरत की
बलैया लहौं भैया, तेरी मैया कैकयी है।'

तथा बेगु बलु साहसु सराहत कृपाल रामु
भरत की कुसल अचलु ल्यायो चलि कै।

स्वतन्त्र रूप से यहाँ भी चित्रण नहीं है प्रसंग से ही नाम का उल्लेख आ गया है।

ऊपर बतलाए गये प्रमाणों से विदित हो जाता है कि 'कवितावली' एक मुक्तक काव्य ही है। उसे हम इतिवृत्तात्मक या कथात्मक मुक्तक की संज्ञा से भी अभिहित कर सकते हैं क्योंकि कुछ न कुछ कथा तो 'कवितावली' के मूल में संचरित हो ही रही है। यद्यपि उसकी धारा पीनधारा नहीं है। विहारी के मुक्तक से इसमें यही एक भिन्नता है। इसको तो हम सूरसागर के समान ही मुक्तक मान सकते हैं जिसमें उसी तरह की रसालता और सरसता है। कवि का ध्यान भी इसको मुक्तक रूप देने में ही है क्योंकि काण्डों में इसको विभाजित करके भी कथा क्रम की ओर से वह निरपेक्ष है।

इस प्रकार 'कवितावली' एक मुक्तक रचना निर्विवाद सिद्ध हो जाती है। नाम भी उसका मुक्तक की ओर ही संकेत करता है क्योंकि 'कवितावली' का अर्थ भी कवित्तों की अवली अर्थात् कवित्तों का समूह या संग्रह ही है जो कि मुक्तक के अनुकूल पड़ता है। वास्तव में तुलसी को प्रबन्ध और मुक्तक दोनों का ही समर्थ कवि मानना पड़ता है।

रस-योजना

रस का सामान्यतः जो अर्थ ग्रहण किया जाता है वह है आनन्द। काव्य या साहित्य में प्रयुक्त होने वाले रस का अर्थ है—काव्यास्वाद अर्थात् काव्य का आस्वादन। कवितावली में रस का परिपाक किस प्रकार हुआ है इसका विवेचन से पूर्व थोड़ा रसों की संख्या पर ही विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रसों की संख्या आठ मानी है—

> शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानका
> बीभत्साद्भुतसंज्ञौचेत्यष्टौनाट्यरसा स्मृता ।

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत और शान्त के विषय में वे मौन ही प्रतीत होते हैं। बाद में आचार्यों ने शान्त को भी मिलाकर नौ तक रसों की संख्या पहुँचा दी। आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में रसों की संख्या दस मानी है तथा दसवाँ रस उनकी दृष्टि में वात्सल्य है। रस संख्या का [illegible] जो कथन साहित्यदर्पण में किये गये हैं वे इस प्रकार हैं—

> शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानका
> बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसा शान्तस्तथा मत ।
> स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु
> स्थायी वत्सलतास्नेह पुत्राद्यालम्बन मतम् ।

इन रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्य भक्ति को भी रस मानने के पक्ष में हैं परन्तु विपक्षी कहते हैं कि यदि भक्ति को शान्त में सम्मिलित कर लिया जाय तो फिर अलग से भक्ति को रस मानने का विवाद ही समाप्त हो जाता है। रसों की संख्या नौ तो बहुत से आचार्य मानते हैं परन्तु वात्सल्य को भी रस मानने में बहुतों को आपत्ति है। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कलाकारों—सूरदास और तुलसीदास ने जो वात्सल्य का चित्रण किया है उसे देखकर यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि वात्सल्य को भी रसत्व प्राप्त है। कुछ आचार्य वात्सल्य को रति में ही अन्तर्भुक्त कर देते हैं परन्तु निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो वात्सल्य को अलग से रस मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वात्सल्यावतार महाकवि सूरदास ने जिस प्रकार से वात्सल्य का चित्रण किया है उस प्रकार विश्व के किसी भी कलाकार ने नहीं किया है और अकेले सूरदास के द्वारा किए गये वात्सल्य वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वात्सल्य नाम का भी कोई रस अवश्य ही है। यहाँ पर इन्हीं दस रसों को लेकर कवितावली की रस योजना पर विवेचन उपस्थित किया जाता है।

शृंगार रस

'कवितावली' में इस रस का चित्रण बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में ही हुआ है। शृंगार के दो भेद—वियोग और संयोग—में से केवल संयोग का ही निरूपण किया गया है। विवाह का अवसर सभी के लिए प्रफुल्लता, प्रसन्नता, मोद तथा मंगल का होता है। दूल्हा और दुलहिन के हृदयों में आनन्द का सागर उमड़ने लगता है और उनके प्रेम का पारावार इतना बढ़ जाता है कि एक बार तो वह अपनी सीमाओं और मर्यादाओं का भी अतिक्रमण करने लगता है। प्रेमी जनों की प्रेम-वृत्ति का विस्तार ऐसे ही समयों पर देखने योग्य होता है और शृंगार रस की सरस धारा का बहाव भी ऐसे ही उत्सवों पर परिलक्षित होता है। यहाँ पर राम दूल्हा बने हैं और सीता दुलहिन। वे राम के रूप को कंगन के नग में इस प्रकार निर्निमेष देखती हैं कि कोहबर में होने वाले जुए में भी दत्तचित्त नहीं हो पाती। उन्हें अपने तन मन की सुध भी नहीं रह जाती, क्योंकि राम के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य और ललित लता में लावण्य के आवर्त विवर्त में इस प्रकार फँस जाती है कि उससे निकलना लिए सम्भव नहीं हो पाता।

> 'दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं
> गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं
> राम को रूप निहारति जानकि, कंकन के नग की परछाहीं
> यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।
>
> —(कविता० बाल० प० १७)

सावयव और सांग रस का कितना सुन्दर उदाहरण तुलसी ने यहाँ उपस्थित किया है। इसकी रस सामग्री इस प्रकार है—

स्थायीभाव—रति

आलम्बन—राम और सीता

उद्दीपन—सखियों तथा सुन्दरियों द्वारा गीत गाना, बाजे आदि का भी बजाना और पाठ आदि का उच्चरित होना। संगीत को कामोद्रेक में महत्वपूर्ण योग माना गया है और उसको मन्मथ का अग्रदूत भी कहा गया है—'संगीत मन्मथस्याग्रदूतः।'

अनुभाव—अपलक रूप पान करना, सुध बुध भूल जाना, हाथ को पल भर के लिए न हिलाना डुलाना, विशेषतः स्तम्भ सात्विक अनुभाव है, क्योंकि स्वाभाविक शारीरिक विकार को ही सात्विक अनुभाव कहा जाता है। मानस में ठीक यही बात इस तरह है—

संचारी भाव—हर्ष, लज्जा, मोह, उत्सुकता।

> 'थके नयन रघुपति छबि देखी पलकन्हि हू परिहरी निमेषी'

मर्यादा की दृष्टि से भी यदि देखा जाय तो यह पद्य अपने आप में अनूठा है। शृंगार का ऐसा स्वच्छ और साफ उदाहरण अन्यत्र कम ही मिल पायगा।

तुलसी ने जहाँ मर्यादा का सफल निर्वाह किया है वहाँ उसका भंग भी 'कवितावली' में कई स्थानों पर किया है। एक पद है—

रस-योजना

रस का सामान्यत जो अर्थ ग्रहण किया जाता है वह है आनन्द। काव्य या साहित्य में प्रयुक्त होने वाले रस का अर्थ है—काव्यास्वाद अर्थात् काव्य का आस्वादन। 'कवितावली' में रस का परिपाक किस प्रकार हुआ है इसका विधान से पूर्व थोड़ा रसों की संख्या पर ही विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रसों की संख्या आठ मानी है—

शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानका
वीभत्सद्भुतसंज्ञौचेत्यष्टौनाट्यरसाःस्मृता ।

शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानक वीभत्स और अद्भुत और शान्त के विषय में वे मौन ही प्रतीत होते हैं। बाद में आचार्यों ने शान्त को भी मिलाकर नौ तक रसों की संख्या पहुंचा दी। आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में रसों की संख्या दस मानी है तथा दसवाँ रस उनकी दृष्टि में वात्सल्य है। रस संख्या को लेकर जो कथन साहित्यदर्पण में किये गये हैं वे इस प्रकार है—

शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानका
वीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रसा शान्तस्तथा मत ।
स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु
स्थायी वत्सलतास्नेह पुत्राद्यालंबन मतम् ।

इन रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्य भक्ति को भी रस मानने के पक्ष में हैं परन्तु विपक्षी कहते हैं कि यदि भक्ति को शान्त में सम्मिलित कर लिया जाय तो फिर अलग से भक्ति को रस मानने का विवाद ही समाप्त हो जाता है। रसों की संख्या नौ तो बहुत से आचार्य मानते हैं परन्तु वात्सल्य को भी रस मानने में बहुतों को आपत्ति है। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कलाकारों—सूरदास और तुलसीदास ने जो वात्सल्य का चित्रण किया है, उसे देखकर यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि वात्सल्य को भी रसत्व प्राप्त है। कुछ आचार्य वात्सल्य का रति में ही अन्तर्भुक्त कर देते हैं परन्तु निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो वात्सल्य को अलग से रस मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वात्सल्यावतार महाकवि सूरदास ने जिस प्रकार से वात्सल्य का चित्रण किया है, उस प्रकार विश्व के किसी भी कलाकार ने नहीं किया है और अकेले सूरदास के द्वारा किए गये वात्सल्य वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वात्सल्य नाम का भी कोई रस अवश्य ही है। यहां पर इन्हीं दस रसों को लेकर 'कवितावली' की रस योजना पर विवेचन उपस्थित किया जाता है।

शृंगार रस

'कवितावली' में इस रस का चित्रण बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में ही हुआ है। शृंगार के दो भेदों—वियोग और संयोग—में से केवल संयोग का ही निरूपण किया गया है। विवाह का अवसर सभी के लिए प्रफुल्लता, प्रसन्नता मोद तथा मंगल का होता है। दूल्हा और दुलहिन के हृदयों में आनन्द का सागर उमड़ने लगता है और उनके प्रेम का पारावार इतना बढ़ जाता है कि एक बार तो वह अपनी सीमाओं और मर्यादाओं का भी अतिक्रमण करने लगता है। प्रेमी जनों की प्रेम-वृत्ति का विस्तार ऐसे ही समयों पर देखने योग्य होता है और शृंगार रस की सरस धारा का बहाव भी ऐसे ही उत्सवों पर परिलक्षित होता है। यहाँ पर राम दूल्हा बने हैं और सीता दुलहिन। वे राम के रूप को अपने कंगन के नग में इस प्रकार निर्निमेष देखती हैं कि कोहवर में खेले जाने वाले जुए में भी दत्तचित्त नहीं हो पाती। उन्हें अपने तन मन की सुध भी नहीं रह जाती, क्योंकि राम के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य और ललित लला मलावण्य के आवर्त्त विवर्त में इस प्रकार फंस जाता है कि उससे निकलना लिए सम्भव नहीं हो पाता।

> दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मन्दिर माहीं
> गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं
> राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं
> यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।
>
> —(कविता० बाल० पद० १७)

सावयव और साग रस का कितना सुन्दर उदाहरण तुलसी ने यहाँ उपस्थित किया है। इसकी रस सामग्री इस प्रकार है—

स्थायीभाव—रति

आलम्बन—राम और सीता

उद्दीपन—सखियाँ तथा सुन्दरियों द्वारा गीत गाना बाजे आदि का भी बजाना और पाठ आदि का उच्चरित होना। संगीत का कामोद्रेक में महत्वपूर्ण योग माना गया उनके है और उसको मन्मथ का अग्रदूत भी कहा गया है— संगीत मन्मथस्याग्रदूत।

अनुभाव—अपलक रूप पान करना सुध बुध भूल जाना, हाथ को पल भर के लिए न हिलाना डुलाना विशेषतः स्तंभ सात्विक अनुभाव है, क्योंकि स्वाभाविक शारीरिक विकार को ही सात्विक अनुभाव कहा जाता है मानस में ठीक यही बात इस तरह है—

संचारी भाव—हर्ष लज्जा मोह उत्सुकता।

थके नयन रघुपति छवि देखी पलकन्हू परिहरी निमेषी

मर्यादा की दृष्टि से भी यदि देखा जाय तो यह पद्य अपने आप में अनूठा है। शृंगार का ऐसा स्वच्छ और साफ उदाहरण अन्यत्र कम ही मिल पायगा।

तुलसी ने जहाँ मर्यादा का सफल निर्वाह किया है, वहाँ उसका भंग भी कवितावली में कई स्थानों पर किया है। एक पद है—

'सुनि सुन्दर बन सुधारस सान सयानी हैं जानकी जानी भली
तिरछे करि नैन दै सन तिन्ह, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली
तुलसी तहि औसर सोहैं सब, अवलोकति लोचन-लाहु अली
अनुराग-तडाग म मानु उद, बिगसी मनो मजुल कज कली
—(वही अयोध्या० प० २२)

अंतिम दो पंक्तियां म प्रकट भाव है कि अनुराग के सरोवर म रामचन्द्र रूपी दिवाकर के निकलन स सखिया रूपी कलिया विकसित हो गइ या खिल गइ और इस प्रकार उन्हाने अपने लोचन सफल प्राप्त करने का फल प्राप्त किया। यदि यह अर्थ लिया जायगा तो निश्चित ही राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप और एक पत्नीव्रत भग हो जाता है, क्याकि राम के साथ तो किसी भी लौकिक प्रेम का सम्बन्ध बन ही नही सकता है। राम न तो अपनी दृष्टि का किसी नारी की ओर डालते हैं न किसी से हँस हँस कर वार्तालाप करते हैं और न किसी को मोहित करने का ही प्रयत्न करते है। उन्ह अपनी मर्यादा का ध्यान बहुत रहता है और कभी भी उसका त्याग करना नही चाहते है। सखिया का अनुराग स रजित होना ही यह प्रकट कर देता है कि उनका सम्बन्ध राम के साथ सती भाव न होकर माधुर्य भाव का है जाकि अमर्यादा की घोषणा करने वाला भी है। कुछ विद्वान इस आरोप को यह कह कर भी टाल सकते हैं कि प्रसग क अनुसार सूर्य राम नही है, अपितु सीता की मुसकान ही सूर्य समान है जिसके कारण वे सखियाँ प्रसन्न हो गइ और प्रमुदित होकर खिलखिला पडी परन्तु नीचे के पद म व्यक्त अमर्यादा का तो अस्वीकार भी कसे किया जा सकता है—

धरि धीर कहैं चलु देखिअ जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं
कहि है जगु पोच न सोच कछू फलु लोचन आपन तौ लहिहैं
सुख पाइ है कान सुन बतियाँ कल आपुस म कछु प कहि हैं
तुलसी अति प्रेम लगी पलक पुलकी लखि रामु हिए महि हैं।'
(वही, अयोध्या० प० २३)

'ससार चाहे हमको बुरा भला कहे परन्तु उसका सोच करना ही व्यर्थ है (कहि है जगु पोच न सोचु कछू) म कितनी निर्भीकता और नियमोल्लघनता विद्यमान है, जिसको ग्राम वधूटियाँ धैर्य धारण करके कहती हैं। यह मर्यादा हीनता कुछ कृष्ण *भक्त कवियों द्वारा व्यक्त मर्यादा हीनता स मिलती-जुलती है। कतिपय कवियों की* उक्तियाँ देने से पुष्टि हो जायगी—

'तुम चाहे जो कोउ कहौ हम ता
नन्द वारे के सग ठइ सो ठइ
तुम ही कुल बीनी प्रवीनी सब
हमही कुन छाँडि गई सो गइ
रसखानि या रीति की प्रीति नई
जु कलक की माट लई सो लइ

एहि गाव के वासी हँस सो हँसै
हम स्याम की दासी भई सो भई—(रसखानि)
"जब तें दरसे मन मोहन जू
तब तें अँखिया ये लगी सो लगी
कुल कानि गई सखि वाहि घरी
जब प्रेम के फन्द पगी सो पगी
कवि ठाकुर नेह के नेजन की
उर मे अनी आनि खगी सो खगी
तुम गावरे नाम रे कोऊ धरौ
हम सावर रग रगी सो रगी।'—(ठाकुर)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी आधुनिक काल मे इसी प्रकार का भाव इस पद मे लिखा है— 'वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी
मन हाथ सो मेरे भग्यो सो भग्यो।
चित माधुरी मूरति देखत ही
हरिचन्द जू जाम पग्यो सो पग्यो
मोहि औरन सो कछु काम नही
अब तो जो कलक लग्यो सो लग्यो
रग दूसरो और चढेगो नही
अलि सावरो रग रग्यो सो रग्यो।"

यह सब दिखलाने का तात्पर्य केवल इतना ही था कि मुक्तक होने के कारण कवि ने कवितावली मे बधन की तिरस्कृति भी दिखादी है। ऐसा स्वाभाविक ही था क्योकि प्रबन्ध मे तो वह मर्यादा-बन्धन मे जकडा हुआ था और समाज की रीति-नीति के नियमन मे था। मुक्तक के उन्मुक्त क्षेत्र मे उसने उस मर्यादा के निर्मोक को उतार फेका है और रस की सरस धारा मे बह कर शृगार को भी मधुर रूप से निरूपित किया है। मुक्तक मे रस की चर्वणा कराने की अमित शक्ति है, इसी कारण उसके महत्व के विषय मे यह कहा गया है—

पूर्वापर निरपेक्षापहियनरसचर्वणाक्रियततदेवमुक्तकम्
—(अभिनवगुप्ताचार्य)

अब कुछ अन्य प्रसगो का पढकर कवि की भावुकता मे शृगार की सात्विक प्रतीति होती है। सबसे पहले तो उस प्रसग को लिया जाता है, जो वन गमन का है जिसमे ग्राम की स्त्रियाँ सीता जी से पूछती हैं कि सावरे रग वाले कौन हैं—

'सीस जटा उर-बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौहैं
तून सरासन-बान धरै तुलसी वन मारग मे सुठि सोहैं
सादर बारहि बार सुभाये चितै तुम्ह त्यो हमरो मन मोहैं
पूछति ग्राम वधू सिय सो कहौ सावरे से, सखि रावरे कोहैं।'
—(कवितावली, अयोध्याकाण्ड, पद २६)

'रामचरितमानस' मे भी ग्राम स्त्रियां ने इसी प्रकार पूछा और सीता ने उसका उत्तर भी बड़े ही मनोरम और सकेतात्मक ढग से दिया था। यह मानस (अयोध्याकाण्ड पद ११७) म अवलोकनीय है।

'कवितावली म सीता जी के कथन म वह चतुरता नही है, जो कि मानस में दिखलाई देती है।

इसके अतिरिक्त चित्रण भी उतना सुन्दर नही है जितना मानस का है। यद्यपि कवितावली' एक मुक्तक काव्य है। यह मुक्तक-काव्य होने के नाते चित्रण म अधिक सरसता आनी चाहिए, परन्तु यह आने नही पाई है।

हास्यरस

कवितावली म हास्य रस का एकदम अभाव तो नही है, परन्तु है नाम मात्र को ही। 'अयोध्याकाण्ड म केवल एक ही पद आया है जिसम इस रस की अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव म तुलसीदास का ध्यान इसम मूल रूप स अपने आराध्य का पौरुष दिखाने पर ही अधिक था। फिर भी मर्यादित वर्णन की दृष्टि स एक वही एक पद अपने आप मे अप्रतिम है। पडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि यद्यपि हास्य अपने सभी अगो के साथ उपस्थित नही हुआ है परन्तु जिस उद्देश्य विशेष को लक्ष्य करके वह लिखा गया है, उसम वह पूर्ण रूप स सफल है। पद इस प्रकार है—

विंधि के बासी उदासी तपी व्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे
गौतमतीय तरी तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसें पद मजुल कज तिहारे
कीन्ही भली रघुनायक जू ! करुना करि काननु को पगु धारे।

—(कवितावली, अयोध्याकाण्ड, पद २८)

इसके विपरीत पडित रामदहिन मिश्र ने अपने 'काव्यदर्पण म हास्य की रस सामग्री को जिस प्रकार बतलाया है वह नीचे लिखी जाती है—

स्थायीभाव—हास,
आलबन—रामचन्द्र
उद्दीपन—गौतम की नारी का उद्धार,
अनुभाव—मुनियो द्वारा राम के आगमन की कथा सुनना
सचारीभाव—हर्ष उत्सुकता चचलता आदि।

सचारी के रूप म भी हास्य का चित्रण 'कवितावली म हुआ है। हनुमान ने युद्ध मे जिस प्रकार रावण के योद्धाओ को गिराया और जिस प्रकार शिवजी व उनके सिद्ध गण हसन लगे यही दिखाना इन पक्तियों का विषय है—

'टहर टहर पर कहरि कहरि उठैं
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै।'

—(लकाकाण्ड, पद ४२)

मूल कथा से भिन्न गोपियों के अनन्य प्रेम के प्रसग मे भी हास्य सम्बन्धी एक उदाहरण मिल जाता है जो कि नीचे दिया जाता है—

'जोग कथा पठई व्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी
ऊधो जू ! क्यो न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हरि हलाकी
जाहि लगै परि जान साई तुलसी सो सोहागिनि नन्दलला की
जानी है जानपनी हरि की अब बाधयगी कछु मोटि कलाकी।'
—(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद १३४)

करुण रस

इस रस को भी कवितावली मे विस्तार प्राप्त नही हुआ है जिस करुण की अविरल धारा मानस मे बह रही है वैसी इस ग्रथ मे नही है। दो चार पदो मे ही इसका आभास हमको मिल पाता है।

भरत की माता कैकेयी द्वारा किए गए कुकृत्य को कौन नही जानता। ससार मे वह कुलनाशिनी के रूप मे कुख्यात है। उनके कपट-व्यवहार का ही फल था कि राम को चौदह वर्ष का वनवास मिला राजा दशरथ के हाय हाय करते प्राण पखेरु उड गये। रानियो का जीवन विषाद मय हो गया।

नीचे के पद मे तो हम स्वय कौशल्या के मुख से ही उनके हृदय का दर्द सुन सकते हैं जो उन्होने सुमित्रा को सुनाया है—

सिथिल सनेहँ कहै कौसिला सुमित्रा जू सो
मैं न लखी सौति सखी ! भगिनी ज्यो सई है
कहै मोहि मैया कहौं न मैया भरत की
बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेई है
तुलसी सरल भायँ रघुराय माय मानी
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतई है
वाम विधि मेरो सुख सिरिस सुमन-सम
ताको छल छुरी कोह कुलिस लै टेई है।
—(वही, अयोध्याकाण्ड पद ३)

इसकी रस सामग्री इस प्रकार है —
स्थायी भाव—शोक
आलंबन—पुत्र वियोगिनी कौसल्या
उद्दीपन—कैकयी का कटु व्यवहार, सुख का न मिलना, राम का मीठा बोलना
अनुभाव—रुदन प्रलाप विधि निन्दा प्रार्थना करना
सचारी भाव—स्मृति, चिन्ता विषाद ग्लानि।

रौद्र रस

राम-कथा मे परशुराम और लक्ष्मण का सवाद रौद्र रस की सुन्दर सामग्री प्रस्तुत करता है। कवितावली मे भी तीन पदो मे यह प्रसग आया है जिसमे कि

दोनों के वार्तालाप में क्रोध का वातावरण छाया हुआ है।

यहाँ एक पद परशुराम के द्वारा लक्ष्मण के प्रति कहे गये वचनों का दिया जाता है।

गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठारु कराल है जाको
सोई हौं बूझत राज सभा 'धनु को दल्यो' हौं दलिहौं बलु ताको
लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहै मरिहै करिहै कछु साको
गोरो गरूर गुमान भरयो, कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको।

--(बालकाण्ड पद २० से)

इसकी रस सामग्री इस प्रकार है—

स्थायी भाव—क्रोध

आलम्बन—लक्ष्मण

उद्दीपन—लक्ष्मण की उक्तियाँ गर्व भरे वचन, छोटे होने पर बड़ी बातें कहना,

अनुभाव—परशुराम का फरसा दिखाना उनकी कठोर वाणी तथा उसके द्वारा अपना पौरुष प्रदान मुख का उद्दीप्त होना आदि

संचारी भाव—मद स्मृति उग्रता आवेग, अमर्ष आदि।

सुंदरकाण्ड तथा लंकाकाण्ड के कुछ एक पदों में भी यह रस आया है परन्तु यह समग्र रूप में नहीं है। वहाँ उसकी परिणति वीर रस या भयानक रस में ही हो जाती है। अब कवितावली के प्रमुख रसों की ओर आते हैं जिनमें वीर रस प्रथम है। वीर रस की दृष्टि से 'लंकाकाण्ड साहित्य की अनुपम निधि है। वह तुलसी की वर्णन-कुशलता का परिचय देने में सक्षम है।

वीर रस

रोप्यो पाउ पैज कै विचारि रघुबीर बलु
लागे भट सिमिटि न, नेकु टसकतु है
तज्यो धीर धरनी धरनीधर धसकत
धराधर धीर भारु सहि न सकतु है
महाबली बालि कें दबत दलकति भूमि
तुलसी उछलि सिंधु मेरु मसकतु है
कमठ कठिन पीठि घट्टा परयो मंदर को
आयो सोई काम पै करेजो कसकतु है

—(कवितावली लंकाकाण्ड पद १६)

अंगद की वीरता का कितना गौरवपूर्ण वर्णन कवि ने यहाँ किया है। एक बार जो उसका पैर पृथ्वी पर रुप गया तो सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच गई। कमठ ने अपनी पीठ की कठिनता के कारण यद्यपि उस अंगद के पैर के भार को सह लिया। परन्तु फिर भी उसके हृदय में कसक तो पैदा हो ही गई।

राक्षस वानर संग्राम में जब हनुमान ने अपना अपार पराक्रम दिखला कर

राक्षसा को गिन गिनकर पृथ्वी पर लिटा दिया तब उनकी बाकी वीरता का बखान सभी बडे-बडे लोग करने लगे—

'दबकि दबोरे एक वारिधि म बोरे एक
मगन मही म एक गगन उडात हैं
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक
चीरि फारि डारे एक मीजि मारे लात हैं
'तुलसी लखत रामु, रावन, विबुध, विधि
चक्र पानि चडीपति चण्डिका सिहात हैं
बडे बडे वीर बानदूत बलवान बडे
जातुधान-जूथप निपाते बात जात हैं।"

—(वही, लकाकाण्ड प॰ ४१)

वीर रस के उदाहरणा की कमी 'कवितावली' म नही है। एक से एक बढिया उदाहरण तुलसी न इस काव्य म रखा है अधिक उदाहरण न देकर उक्त पद्य के द्वारा इस प्रसग की उत्कृष्टता दिखाइ गई है।

भयानक रस

सुदरकाण्ड का लकादाह भयानक रस से ओत प्रोत है। लगभग बीस पदा म तुलसी ने जो भयानकता और भयावहता दिखलाइ है वह उनकी वणना शक्ति और रस निरूपण शक्ति का पूरा पूरा परिचय दता है।

जहा तहा बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत
जरत निकेतु धावो धावो लागी आगि रे
कहाँ तातु मातु भ्रात भगिनी भामिनी भाभी
ढोटा छोट छोहरा अभागे भाडे भागि रे
हाथी छोरो घोरा छोरो महिष वृषभ छोरो
छेरी छोरो सोव सो जगावो, जागि जागि रे
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कह
बार बार कह्यौं, पिय ' कपि सा न लागि रे।"

—(कवितावली सुदरकाण्ड, पद ६)

इसकी रस सामग्री इस प्रकार है —
स्थायी भाव—भय
आलम्बन—हनुमान
उद्दीपन—अग्निदहन निकेत दहन, आग की लपटें,
अनुभाव—भागना चिल्लाना दैन्य पूण वाक्य कप और ववण्य
सचारी भाव—आकुलता चिन्ता त्रास, निद्रा आवेग अधय, मति आदि।

रावण की प्रधान रानी मन्दोदरी तथा अन्य रानिया की स्थिति

बीभत्स रस

राम रावण युद्ध म अपार नर सहार हुआ, युद्ध भूमि पर गिरने लग और खून की नदियाँ बह चलीं। गीदड़ तो एस अवसर की ताक म थे ही। उन्होंने उन शवों के पेट फाडकर खाने की तयारी कर दी और कौए तथा गिद्ध आदि न चिल्ला चिल्लाकर घृणा का दृश्य उपस्थित कर दिया—

' लोथिन सो लोहू क प्रवाह चले जहाँ तहाँ
मानहुँ गिरिन्ह गेरु झरना झरत हैं
श्रोनित सरित घोर कुजर करार भारे
कूल त समूल बाजि बिटप परत हैं
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ
सूरनि उछाहु कूर कादर डरत हैं
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात
काक कक बालक कोलाहलु करत हैं।
--(कवितावली लकाकाण्ड पद ४८)

इसकी रस सामग्री इस प्रकार है —
स्थायी भाव — जुगुप्सा (घृणा)
आलम्बन—श्मशान भूमि (शव रुधिर मास)
उद्दीपन—कौआ और गिद्धा द्वारा कोलाहल गीदडो का लोथो को फाडना और खाना
अनुभाव —शूर वीरो म उत्साह का जगना तथा कायर (अहिंसक) आदि का उसके बारे म सोचना और डरना
सचारी भाव—ग्लानि निर्वेद उन्माद (पागलपन) आदि।

पडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र न कवितावली की आलोचना म नय सचारी शीर्षक के अन्तगत तेतीस सचारियो के अतिरिक्त दो नय सचारियो की चर्चा की है। उनम एक खीझ' तथा दूसरा 'प्रसाद' है। सुन्दरकाण्ड म लगी आग को देखकर रानियो आदि क मन म जो खीझ पदा होती है उसको खीझ सचारी माना गया है। प्रसाद वहा माना गया है जहा पर कि राम लक्ष्मण क सौन्दय को देखकर लोगो को प्रसन्नता होती है। कुछ लोग हाहा भी करते है जिनकी चित्तवत्ति स्वच्छ होती है। उनके हृदय म प्रसन्नता ही होती है। उदाहरणो को देने की यहाँ आवश्यकता नही है क्योकि भयानक और करुण रस के वणन के समय वे देखे ही जा सकते है। यहा यह भी कथनीय है कि जसे खीझ अमप या रोष से भिन्न है उसी प्रकार प्रसाद भी हष स भिन्न है। खीझ भयानक रस का सचारी होकर आया है तो प्रासद' करुण रस का सचारी बनकर।

अ त म हम कह सकत हैं कि कवितावली तुलसी की रस वणन की निपुणता और सिद्धहस्तता प्रकट करती है। वीर, भयानक और बीभत्स जसे परुष रसो की

योजना तो निस्सन्देह यह प्रकट करती है कि तुलसी जहां मृदुल या मसृण भावों का चित्रण करने में कुशल हैं वहां कठोर या कराल भावों के चित्रण में भी उनकी कला-चतुरता का दर्शन हमें होता है।

अद्भुत रस

जब कोई आश्चर्यजनक या विस्मयजनक वस्तु या घटना घटित होती है तो वहाँ पर अद्भुत रस की सृष्टि हुआ करती है। कभी-कभी अलौकिक कार्यों को करने में भी अद्भुतता लाई जाती है। ऐसे कार्य या घटनाएँ तभी हुआ करती हैं जब जब उनको करने वाला कोई उद्भट योद्धा या दिव्य वीर हुआ करता है।

हनुमान के लिया लाघव का चमत्कार उस अवसर पर देखने में आता है, जिस समय वे लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर औषधि लेने जाते हैं और सम्पूर्ण पहाड़ को ही उखाड़कर आनन्दपूर्वक तत्काल चले आते हैं—

लीन्हो उखारि पहार बिसाल
चल्यो तेहि काल बिलंबु न लायो
मारुतनन्दन मारुत को मन को
खगराज को बेगु लजायो
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो
पै हिए उपमा को समाउ न आयो
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ
लीक लसी कपि यों धुकि धायो।'

—(वही लंकाकाण्ड पद ५४)

हनुमान की त्वरित शक्ति का निदर्शन हमें इस पद में मिल जाता है जो साधारण नहीं है। कवितावली में तुलसी ने हनुमान के अद्भुत कार्यों की जितनी अभिव्यक्ति की है उतनी राम के कार्यों की नहीं, क्योंकि राम के ब्रह्म रूप की विकरालता व्यापकता और विस्मयता को जितना 'मानस' में दिखाया गया है उतना यहाँ नहीं। मानस में तो तुलसी राम के ब्रह्मत्व का दिग्दर्शन स्थान-स्थान पर कराते चलते हैं।

शान्त रस या भक्ति रस

कवितावली के आलोचकों में विशेषतः पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डा० रामकुमार वर्मा ने 'उत्तरकाण्ड' में शान्त रस को लहराता हुआ देखा, परन्तु इस काण्ड में शान्त रस की अपेक्षा भक्ति रस अधिक आप्लावित होता हुआ दिखाई देता है। तुलसी जैसे भक्त कवियों की रचनाओं को देखकर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भक्ति भी एक रस है। उत्तरकाण्ड में शान्त रस न मिलने का कारण है कि उसमें संसार की असारता या अनित्यता कहीं नहीं दिखलाई गई है। उसमें तो भक्त की याचना अधिक है और उस याचना के द्वारा वह भगवान को उनके विरद का स्मरण

ही बार-बार करार अपने उद्धार का प्रसग ले आता है। यदि कवितावली म शान्त रस कुछ दिखलाई देता है, तो 'अयोध्याकाण्ड' के प्रारम्भिक छदो म ही, जिनमे कि राम राजपाट परिवार परिजन माता पिता और वभव को छोडकर घर से निकल पडते हैं—

> "कागर कीर ज्यो भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यो काई
> मातु पिता प्रिय लोग सब सनमानि सुभाय सनेह सगाई
> सग सुभामिनि, भाइ भलो दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाइ
> राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाइ।'
>
> —(वही अयोध्याकाण्ड पद २)

शान्त का स्थायीभाव निर्वेद है, जिसम मोह को छोडना पहली शत है। राम भी सब कुछ छोडकर, उससे उदासीन होकर चल हैं। जो शान्त की परिपूर्णता देखने के पक्षपाती हैं, उन्हें वह नही मिल पायगी। यहाँ तो उसकी झलक मात्र है।

भक्ति

'उत्तरकाण्ड' म अनेक भक्ति रस के उदाहरण हैं। यहाँ पर एक पद देकर उसकी रस-सामग्री बतलाई जाती है—

> कौसिक की चलत पपान की परस पाय
> टूटत धनुष बनि गई है जनक की
> कोल पसु, सबरी बिहग भालु रातिचर
> रतिन के लालचिन प्रापति मनक की
> कोटि कला कुसल कृपालु नतपाल! बलि
> बातहू केतिक तिन तुलसी तनक की
> राय दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि!
> तरे हेरे लोप लिपि बिधि हू गनक की
>
> (वही उत्तरकाण्ड पद २०)

स्थायीभाव—ईश्वरानुराग।

आलबन—राज शिरोमणि दशरथ पुत्र राम।

उद्दीपन—भनको की रक्षा करना उनकी बिगडी सुधारना तथा थोडा मागने पर भी अधिक देने का स्वभाव जानना।

अनुभाव—विनय करना शरण मागना उद्धार चाहना।

सचारीभाव—हर्ष, मति, औत्सुक्य आत्मदैन्य प्राकट्य आदि।

वात्सल्य

पुत्र प्रेम या पुत्र स्नेह जहा पर माता पिता आदि के द्वारा पुष्ट होना है वहाँ पर वात्सल्य रस माना जाता है। 'कवितावली' के प्रारम्भिक सात पदो म इस रस की अभिव्यक्ति तुलसी ने की है। एक उदाहरण द्वारा उसका रूप दिखलाया जाता है—

'कबहू ससि मागत आरि करैं कबहू प्रतिबिंब निहारि डरै
कबहूँ करताल बजाइक नाचत, मातु सब मन मोद भरै
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि क पुनिलेत सोई जेहि लागि अरैं
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मनमंदिर म विहरैं।"

—(कवितावली बालकाण्ड पद ४)

स्थायीभाव—वात्सल्य या स्नह।
आलंबन—दशरथ पुत्र रामि आदि चारा भाई।
उद्दीपन—करताल बजाना, रिस करना प्रतिबिंब निहारना हठ करना।
अनुभाव—छवि दशन तथा मन मे मोद भरना।
सचारीभाव—हप, गव आदि।

अलकार-विधान

अलकार का सामान्य अर्थ है—शोभा या शोभावर्द्धक आभूषण अलकरोति इति अलकार अर्थात् जिसके द्वारा शोभा बढाई जाय या अलकृति की जाय उसे अलकार कहते है। अलकार या आभूषण धारण करने से जिस प्रकार कामिनी की कान्ति वृद्धि को प्राप्त होती है, उसी प्रकार कविता की शोभा भी अलकारो के द्वारा अधिक हो जाती है। यह असदिग्ध है कि यदि कोई कामिनी रूपवती होगी तो अलकारो को पहनने से उसकी कान्ति द्विगुणित हो जायेगी और अलकार वहा सोने मे सुगन्ध का सा काम करेगे परन्तु यदि कोई कामिनी कुरूप होगी तो अलकार उसकी शोभा बढाने के स्थान पर निज की दीप्ति भी खो बठेगे। इस बात को कोई अस्वीकार नही कर सकता है। इसलिए पहले से ही कुछ आचार्यों ने अलकारो को काव्य का अस्थिर धर्म माना है—

अस्थिरा इति नपागुणवदावश्यकी स्थिति —साहित्यदर्पण

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिन —साहित्यदर्पण

सगुणावनलकृती पुन क्वापि —काव्यप्रकाश

'काव्यशोभाया कर्तारो गुणा

तदतिशयहेतवश्चालकारा —काव्यालकार सूत्र

महाकवि कालिदास के भाव को ही मैं उचित मानता हूँ कि रमणी यदि रमणीय है तो उसे किसी अलकार को पहनने की आवश्यकता नही है क्योकि वल्कवसन को धारण करके भी शकुन्तला का अनिंद्य छवि कितनी आकर्षक और अनाविल थी। यही नही कमल की शोभा को सेवार रोक नही सकती और कलाधर की कांति को कलक रेखा मिटा नही सकती क्योकि जो स्वाभाविक और नैसर्गिक है उस पर आवरण आ भी जाय तो उसकी निष्कलकता और निर्मलता पर किसी प्रकार का दोष नही लग पाता—

सरसिज लगत सुहावनो यदपि लियो ढकि पक
कारो रेख कलक हू लसति कलाधर अक
पहरे वल्कल वसन यह लागति नीकी बाल
कहा न भूषन होइ जो रूप लिख्यो विधि भाल।

—(राजा लक्ष्मणसिंह कृत अनुवाद से)

दूसरी ओर कुछ एस आचार्य भी हुए है जिन्होंने अलकारो को अधिक महत्व दिया है और उन्हे शोभा के लिए परमावश्यक माना है। उनका कहना है कि बिना अलकार के शोभा का आना सम्भव ही नहीं है। अलकार-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह ने कहा है कि जिस प्रकार वनिता आनन भूषण के बिना शोभा नहीं पाता, उसी

प्रकार सुन्दर काव्य भी अलंकार के बिना अलङ्कृत नहीं होता—

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्'

आचार्य दंडी ने भी उन्हें महत्व देते हुए काव्य का शोभाकारक धर्म माना है—

'काव्यशोभाकरानधर्मान् अलंकारान प्रचक्षते'

'चन्द्रालोक'कार जयदेव ने तो अलंकारों का प्रबल समर्थन किया है और कहा है कि काव्य को जो अलंकार रहित मानता है वह अग्नि को उष्ण रहित क्यों नहीं मानता—

'अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती

असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलंकृती ।' —(चन्द्रालोक)

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि अलंकार का महत्व निर्विवाद है परन्तु वह सब कुछ नहीं है और उसे 'सब कुछ' माना भी नहीं जाना चाहिए।

अलंकारों की संख्या को बतलाने का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। हाँ उनके वर्गीकरण का संक्षिप्त विवेचन कर लेना उचित है। प्रायः उनके सात वर्ग बनाये गये हैं जिनको नीचे दिया जाता—

(१) सादृश्यमूलक—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रांति, दृष्टांत आदि।

(२) विरोधमूलक—विभावना, विशेषोक्ति, व्याघात, विरोध आदि।

(३) शृंखलामूलक—कारणमाला, एकावली, मालादीपक आदि।

(४) तर्कन्यायमूलक—काव्यलिंग, अनुमान।

(५) वाक्यन्यायमूलक—यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या आदि।

(६) लोकन्यायमूलक—प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण आदि।

(७) गूढार्थप्रतीतिमूलक—व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, संसृष्टि आदि।

इस विभाजन में अर्थालंकारों पर ही दृष्टि रखी गई है और शब्दालंकारों की ओर संकेत भी नहीं किया गया है। इसलिए यदि एक वर्ग 'वर्णविन्यासमूलक' अलंकारों का और मान लिया जाय तो सभी अलंकारों का वर्गीकरण हो जायगा और आठ वर्ग बन जायेंगे।

मुख्य रूप से अलंकार तीन प्रकार के माने गये है—

(१) शब्दालंकार—शब्दों के चमत्कार पर आश्रित।

(२) अर्थालंकार—अर्थों के चमत्कार पर आश्रित।

(३) उभयालंकार—शब्दों व अर्थों—दोनों के चमत्कार पर आश्रित।

नीचे कवितावली में प्रयुक्त अलंकारों का उल्लेख किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी अलंकारों के उदाहरण यहाँ दिए जायें परन्तु यथासम्भव अलंकारों के उदाहरण अवश्य ही प्रस्तुत किए जाते हैं।

शब्दालंकार

शब्दालंकार शब्द के सौन्दर्य को लेकर चलते हैं और शब्द सौन्दर्य तक ही उनकी सीमा मानी जाती है। तुलसी ने शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है और

बहुत सावधानी के साथ उनका निर्वाह किया है। शब्दों के चयन व संयोजन में [illegible]
था। कहीं कृत्रिमता भी नहीं दृष्टि आती है। उनको स्पष्ट ऊपर से लादने की आदत
पड़ी हुई नहीं दिखाई है और न थी। तथा अलंकार के विधान के लिए चुनाव ही करते
है। बहुत से कवि शब्दों का ढूँढ ढूँढ कर लाते हैं और जबरदस्ती अलंकार को ठूँस कर
बिठा देते हैं। वे इस प्रकार की विचित्रता और चमत्कार का प्रदर्शन करना ही अपना
ध्येय समझते हैं। नीचे लिखे जाने वाले उदाहरणों से यह विदित हो जायगा कि तुलसी
ने अलंकारों के लिए कविता नहीं लिखी है अपितु अलंकार स्वयमेव आकर उनकी
कविता की शोभा वृद्धि कर रहे हैं। शब्दालंकारों में प्रथम स्थान अनुप्रास का है।
इसलिए पहले उसी को लिया जाता है।

अनुप्रास

जहाँ व्यंजन वर्णों की कई बार आवृत्ति होती है वहाँ पर यह अलंकार माना जाता है। उदाहरण है—*छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्रछाया*—(बाल० पद ८)

पद में छ, न, प्र, य, तथा न वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है। साथ ही छ और ट जाति वर्णों के प्रयोग से परुषा वृत्ति भी आ गई है। अतः वृत्यानुप्रास का भी यह उदाहरण हुआ। तुलसी की विशेषता यह भी है कि एक पद में एक ही अलंकार नहीं होता उसमें अन्य भी आकर शोभा बढ़ाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो छानी छानी बाज-बाजे, बार-बार में वीप्सा अलंकार है तथा बाजे-बाज (कोई-कोई) और बाज (बाजनेऊ) में यमक अलंकार भी है। ऐसा ही एक अन्य उदाहरण दिया जाता है—

भूपमंडली प्रचण्ड चण्डीस—को दंड खंड्यो
चंड बाहुदंडु जाको ताही सों कहतु हौं
कठिन कुठार धार धरिवे को धीर ताहि
वीरता विदित तारो देखिए चाहतु सो
तुलसी समाजु राज तजि सो विराज आजु
गाज्यो मृगराजु ज्यों गजराजु गहतु हौं
छोनी में न छांड्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटो
छोनिप छपन बाँको विरुद वहतु हौं—(बालकाण्ड १८)

यहाँ ट, ठ, ड आदि कठोर वर्णों की आवृत्ति भी हुई है और पद में रुद्रता भी आई है। परुषावृत्ति के होने से यह भी वृत्यानुप्रास का उदाहरण है। परशुराम की फरसे के समान भीषणता को कवि ने समर्थ शब्दों में वाणी दी है और ओज व्यंजक शब्दों के प्रयोग ने तो पद की सुन्दरता को द्विगुणित कर दिया है। कवि ने वे ही शब्द प्रयुक्त किए हैं जिनसे क्रोध की करालता स्पष्टतः ध्वनित हो रही है।

अनुप्रास के एक अन्य भेद श्रुत्यानुप्रास का प्रयोग भी तुलसी ने किया है जो कि विशेष रूप से उत्तरकाण्ड में ही देखा जा सकता है। यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ ध्वनि-यन्त्र के किसी एक स्थान से निकलने वाले वर्णों की आवृत्ति हुआ करती है जैसे—जानकी जीवनु की जनु ह्वै जरि जाइ सो जाहि जो जाचत औरहि

यहाँ जकार की आवृत्ति है, जो कि तालु स्थान से सम्बन्ध रखता है। प्राय तुलसी ने जकार को ही जगह-जगह दुहराया है, जिससे उनका उसके प्रति मोह दिखाई देता है। एक अन्य उदाहरण है—

'जग जाचिअ काउ न, जाचिअ जौं, जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे।'

कोई भी शब्द व्यर्थ प्रयुक्त नहीं हुआ है और सुन्दर भाव व्यजना बडी विशद बन गई है।

अनुप्रासों का 'कवितावली' में कहीं अभाव नहीं है। सर्वत्र ही उसके सुन्दर सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए तुलसी को अनुप्रास का सम्राट कहा है।

यमक

जहाँ पर एक ही शब्द की पुनरावृत्ति भिन्न भिन्न अर्थों में की जाती है वहाँ यमक अलकार होता है। इस अलकार का उपयोग तुलसी ने कम ही किया है—

'काढि कृपान कृपा न कहूँ पितु काल कराल विलोकि न भागे।

कृपान शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है और दोनों बार भिन्न अर्थ में। पहले कृपान का अर्थ कृपाण या तलवार है और दूसरे कृपान शब्द का अर्थ 'कृपा का न होना है।' इसी प्रकार—सीस बसै बरदा बरदानि, चढ़यो बरदा धरयो बरदा है।

इसमें बरदा शब्द दो तीन बार आया है। पहले बरदा का अर्थ वर देने वाली गगा से हैं और दूसरे बरदा का अर्थ बैल से है जिसकी सवारी शिवजी करते हैं। तीसरे बरदा का वही अर्थ है, जो प्रथम का है।

वक्रोक्ति

वक्रोक्ति का सामान्य अर्थ टेढ़ी उक्ति से है परन्तु जब कहने वाले के कथन का सुनने वाला कुछ का कुछ अर्थ लगा लेता है तभी यह अलकार हुआ करता है। इसके दो भेदों में से (i) काकु वक्रोक्ति का ही प्रयोग यहाँ हुआ है। (ii) श्लेष वक्रोक्ति का प्रयोग तो है ही नहीं। काकु वक्रोक्ति का अर्थ है, कठ की ध्वनि से अन्य अर्थ का निकालना। एक उदाहरण है—

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हो ?
को न लोभ दृढ़ फद बाँधि त्रासन करि दीन्हो ?

काकु के द्वारा इसमें आये हुए प्रश्नों का अर्थ उत्तर रूप में हो जायेगा, जिससे यह अर्थ होगा कि क्रोध सबको जला डालता है काम हर एक को वश में कर लेता है और लोभ अपने दड पाश में हर एक को बाँध लेता है।

वीप्सा

इस अलकार का प्रयोग तुलसी ने बहुत किया है। विशेष रूप से 'सुन्दरकाण्ड' में अनेक बार यह अलकार आया है। भयभीत लोगों की भगदड़में उनके मुख से जो

प्रचानर वास्य निवल पडे हैं ये आवत्ति का लिए हुए हैं। वीप्सा अलंकार म यही आवत्ति किसी प्रकार घरने वाले भाव का प्रभाव दिखाने के लिए हुआ करती है।

हाथी छोरो घोरा छोरो, महिष वषभ छोरो
छेरी छोरो सोव सो जगावो जागि जागि र।

इसम छोरो छोरो शब्द की कई बार आवत्ति हुई है। इसी प्रकार दो उदाहरण और—

वाह मघनाद ! वाह वाह रे महाभट ! तूं
धीरज न देत लाइ लेत क्यो न हाथ सो
वाह भनि वाय ! वाह वाह रे अकपन
अभाग तोय त्याग भाइ भाग जान हाथ सो

तथा — प्रिया ! तू पराहि नाथ ! नाथ ! तू पराहि
बाप ! बाप ! त पराहि पूत ! पूत ! तू पराहि रे

इनम वाह वाह शब्द तथा पराहि पराहि शब्दो की पुनरावत्ति हुई है।

पुनरुक्ति प्रकाश

अब कुछ अन्य शब्दालकारो का भी दिखाया जाता है जिनके उदाहरण कवितावली म यत्र-तत्र मिल जाते ह। पुनरुक्ति प्रकाश अलकार देखिए—

पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहे
जाति हैं परानी गति जानी गज चालि है—(१)
लागी लागी आगि भागि भागि चल जहाँ तहाँ
धीय को न माय बाप पूत न सभारहो—(२)

इस अलकार म, जसा कि उदाहरणो म आये हुए शब्दो स व्यक्त (पुनरुक्ति प्रकाश) है आवत्ति स भाव और भी प्रकाशित या सुशोभित हो उठते है। यहाँ पर एसा ही हुआ है। जिन शब्दो की दो दो तीन तीन बार की आवत्ति स शोभा अधिक बढ गई है व हैं—पानी लागी भागि।

श्लेष

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यो
बिहूने गुन पथिक पिया से जात पथ के।

गुन शब्द म श्लेष अलकार है जिसके दो अथ हैं। एक अथ है गुण तथा दूसरा अथ है—रस्सी। यह अलकार वहाँ पर होता है जहाँ एक ही शब्द प्रसग के भेद के कारण कई अर्थों को व्यक्त करता है। मनाक शब्द की श्लेष याजना कवि ने इन पक्तियो म दिखलाई है—

नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि
होत न बिसोक औत पाव न मनाक सो।

'मनाक' का एक अथ है पवत विशेष जो कि इन्द्र के भय स अब तक छिपा हुआ है तथा दूसरा अथ तनिक है।

अर्थालंकार

शब्दालंकार मूल रूप से शब्दों की वाह्य चमक दमक तड़क भड़क से ही सम्बन्ध रखते हैं जबकि अर्थालंकार अर्थों के आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन करते हैं। अग्नि पुराणकार का कहना है कि अर्थों का अलङ्करण करना ही अर्थालंकार का कार्य है और उस अर्थालंकार के बिना शब्द सौंदर्य भी सुहावना नहीं बन पाता—

'अलङ्करणमर्थानामर्थालंकार इष्यते
तं बिना शब्द सौन्दर्यमपिनास्ति मनोहरम्।
—(अग्निपुराण)

इतना ही नहीं उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि अर्थालंकार के बिना सरस्वती विधवा है—अर्थालंकाररहिता विधवेव सरस्वती।

अब 'कवितावली' के अर्थालंकारों का दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जाता है।

उपमा

सादृश्य (उपमेय और उपमान) को लेकर चलने वाले अलंकार का नाम उपमा है। राम के बाल रूप की झाँकी प्रस्तुत करते हुए कवि ने जो उपमा दी है, वह इन पंक्तियों में प्रकट है—

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से
सजनीससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।

राम के अंजन रंजित नयनों की उपमा नवीन नील कमलों से दी गई है जो कि स्वाभाविक ही है। नयन की उपमा कमल से दी ही जाती है और अंजन लगाने के कारण उसे नील भी ठीक ही कहा गया है। राम का मुख चन्द्रमा के समान है जिसमें समान रूप और गुण वाले नीलकमलों का जो खिलना दिखाया गया है व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता।

रूपक

इस अलंकार का प्रयोग तुलसी ने बहुत किया है। सांगरूपकों या समस्त वस्तु विषयक सांगरूपकों की तो कवितावली में बाढ़-सी आ गई है। सांगरूपकों के निर्माण में तुलसी का काव्य कौशल सर्वत्र देखा जा सकता है। वे जहाँ चाहते हैं वहाँ रूपक खड़ा कर देते हैं क्योंकि रूपक रचना को वे अपने बाएँ हाथ का खेल समझते हैं। कवियों की काव्य चातुरी की परीक्षा रूपकों के द्वारा भी हुआ करती है। बहुत से कवि रूपक की रचना में असमर्थ रहते हैं और यदि उसकी रचना करते भी हैं तो असफल हो जाते हैं परन्तु तुलसी के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे रूपक की रचना ही नहीं करते अपितु उसका निर्वाह भी करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यदि उनको अनुप्रास का बादशाह कहा है तो लाला भगवान दीन ने उनको 'रूपक का बादशाह' कहा है। रूपकों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं जिनमें तुलसी का रूपक प्रेम प्रकट हो जायेगा। एक उदाहरण है—

'रावनु सो राजरोगु बाढ़त बिराट उर
दिनु दिनु बिकल सकल सुख रांक सो
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि
होत न बिसोक औत पावै न मनाक सो
राम की रजाइ तें रसाइनी समीरसूनु
उतरि पयोधि पार, सोधि सरवाक सो
जातुधान-पुट पुटपाक लंक जातरूप
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो।

यहाँ पर राजरोग तथा उसकी निवृत्ति के लिए औषध बनाना यह प्रस्तुत कार्य है। इस पर अप्रस्तुत विधान बनाया गया है कि रावण राजयक्ष्मा जैसा भयंकर रोग है जो विश्व के हृदय में बढ़ रहा है। जब सुर मुनि सभी उपाय रूपी औषध कर के हार गये तब रस वैद्य (केमिस्ट) हनुमान ने विशेष औषध बनाई। विधि इस प्रकार है। लंका रूपी सकोरा है राक्षस रूपी बूटियाँ हैं सकोरे में स्वर्ण व रत्न जलाकर उनका पुटपाक दिया गया है। इस तरह से जो स्वर्णभस्म तैयार की गई है वह रावण रूपी रोग के लिए रामबाण औषध है। क्या ही सुन्दर रूपक की नियोजना की गई है और हनुमान की रसायनी प्रकृति का परिचय दिया गया है।

उत्प्रेक्षा

इस अलंकार का प्रयोग भी तुलसी ने अधिक मात्रा में किया है। एक से एक सुन्दर उत्प्रेक्षाएं 'कवितावली' में भरी पड़ी हैं। यदि वे अनुप्रासों और रूपकों के बादशाह हैं तो उत्प्रेक्षाएँ भी उनकी ऊर्जस्वित निधियाँ हैं जो कि उनकी उर्वरा शक्ति का उद्योतन कराती हैं। उनकी ऐसी ही कुछ उत्प्रेक्षाओं को यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।

एक दृश्य है—सीता के स्वयंवर का। सीता जी राम के गले में जयमाला डालने जा रही हैं। उनकी सखियाँ उनको जयमाला पहनाने को कह रही हैं। उस समय की अपार शोभा और प्रफुल्लता का क्या ठिकाना। झरोखों में बैठकर रानियाँ उस शोभा को निहार रही हैं इसी पर कवि उत्प्रेक्षा करता है—

तुलसी मुदित मन जनक नगर जन
झाँकती झरोखे लागी सोभा रानी पावती
मनहु चकोरी चारु बैठी निज निज नीड़
चन्द की किरन पीवैं पलकौं न लावती।

रानियों का अपलक देखना चकोरियों का चंद्र की ओर टकटकी लगाने से कम नहीं है। कवि प्रसिद्धि भी है कि चकोरी चन्द्र की ओर अपनी दृष्टि रखती है और उसकी किरणों का ही पान करती हैं।

अपने आराध्य देव राम की महाछवि का निरंतर एकाग्र होकर तुलसी ने ध्यान किया है और उसकी सराहना की है। युद्ध जैसी विभीषिका में भी उन्होंने उसी छवि को देखा है और अपने पाठकों को भी निर्मल छवि का दर्शन कराया है। लोहू की

बूदा से लथपथ राम ही क्या, कोई भी व्यक्ति सुहावना नही लग सकता। अवश्य ही उस समय उसकी आकृति अद्भुत और घिनावनी लगने लगती है। परन्तु तुलसी को यह इष्ट नही था कि उनके इष्टदेव भी घृणा का उत्पन्न करें या अपने दशकों को नाक भौं सिकोडन का अवसर दें। इसीलिए कवि ने राम को मरकत-पर्वत और बूदा को वीर बहूटिया। मान कर बडी ही शोभा उत्पन्न करने वाली और मैल को मिटाने वाली उत्प्रेक्षा कर डाली है—

> श्रानित छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी
> मानो मरक्कत सैल विसाल म फलि चली बर बीर बहूटी

अब तुलसी की प्रकृति निरीक्षण सम्बन्धी एक उत्प्रेक्षा भी दर्शनीय है। प्रसग लक्ष्मण के द्वारा पहाड को उठा ले आने की अद्भुत शक्ति से जगमगा रहा है—

> 'लीन्हा उखारि पहार विसाल चल्यो तहि काल बिलबु न लायो
> मारुत नदन मारत को मन को खगराज को बगु लजायो
> तीखी तुरा तुलसी कहता पै हिएँ उपमा को समाउ न आयो
> मानो प्रतच्छ परवत की नभ लीक लसी कपि यो धुकि धायो।"

उपमा म एक प्रकार की समानता या सदृशता प्रधान हुआ करती है। जब कवि को समानता प्रदर्शित करने के लिए कोई वस्तु नहीं मिलती या वह उपमा देने म असफल हो जाता है तब वह फिर सभावना कर लिया करता है और यही सभावना उत्प्रेक्षा को नाम दिया करती है। विशाल शैल को लेकर जब हनुमान चले तब आकाश म एक लम्बी लकीर बन गई थी। कवि कहना चाहता है कि इस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो पर्वत के रूप म एक विस्तृत रेखा नभ म अंकित हो गई थी जिसने आकाश को कुछ समय के लिए अदृश्य बना दिया था। दूसरी पंक्ति म प्रतीप अलंकार भी उत्प्रेक्षा के साथ सम्मिलित हो गया है।

समष्टि

तिल तडुल न्याय के अनुसार जसे तिल और तडुल सम्मिलित होने पर भी भिन्न भिन्न दिखलाई देते हैं, उसी प्रकार इस समष्टि अलंकार म भी एक स्थान पर अलंकार मिलते हुए भी अपनी पृथक पृथक सत्ता रखा करते हैं। महान् कवियो की यह भी एक विशेषता हुआ करती है कि वे एक पद मे एक अलंकार ही प्रयुक्त नहीं करते अपितु अनेक अलंकारो का प्रयोग भी अचानक कर दिया करते हैं। तुलसीदास ने भी ऐसा ही किया है। सीतावट के वर्णन म कई अलंकारों का प्रयोग किया है—

> मरकत बरन परन, फल मानिक-से
> लसै जटाजूट जनु रुख वेष हरु है
> सुषमा को ढेरु कधौं सुकृत सुमेरु कधौं
> सपदा सकल मुद-मगल को घरु है
> देत अभिमत जो समेत प्रीति सइये
> प्रतीति मानि तुलसी विचारि काको थरु है

सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै
राम रवनी को बटु कलि कामतरु है।'

प्रमुखता इस पद में रूपक अलंकार की है, क्योंकि सीतावट को कलि कामतरु कहा गया है। इसके अतिरिक्त अगले चरण, पद्मासिन्धु में उपमा है 'लसै जटाजूट जनु रूखवेष हरु है' में मानो वट पर उत्प्रेक्षा की गई है तीसरी पंक्ति में सन्देह अलंकार है। इस प्रकार सुहावना संसृष्टि अलंकार यहाँ है।

त्रिजटा और सीता के आपसी वार्तालाप का स्वरूप जो पद लिखा गया है उसमें भी कवि ने कई अलंकारों की अवतारणा की है—

'बिनय सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों
पाए कछु समाचार आरज सुवन के
पाए जू, बँधायो सेतु उतरे भानुकुल केतु
आए देखि देखि दूत दारुन दुवन के
बदन मलीन बलहीन दीन देखि मानो
मिटै घटै तमीचर, तिमिर भुवन के
लोकपति कोक सोक मूँदे कपि कोकनद
दंड द्वै रहे हैं रघुआदित्य-उवन के।

विषय की प्रधानता इसमें भी है। रामचन्द्र आदित्योपम हैं तमीचर तिमिर हैं लोकपति चकवे हैं और वानर कमल हैं। यदि तिमिर के साथ मिटै का और तमीचर के साथ घटै का सम्बन्ध माना जाय, जैसा कि लाला भगवानदीन ने माना है तो यथासंख्य अलंकार भी है।

मन्दोदरी के उस कथन में भी कई अलंकार एक साथ प्रयुक्त हुए हैं जिसमें उसने अपने पति को गालियाँ देकर बहुत निन्दा की है—

'कानन उजारयो तो उजारयो न बिगारो कछू
बानर बिचारो बाँधि आयो हठि हार सो
निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेषि
दीन्हो न छुडाइ कहि कुल के कुठार सो
छोटे और बडे रे मेरे पूतऊ अनेरे सब
साँपनि सों खेल मेल गरे छुराधार सो
तुलसी मँदोबै रोइ रोइ कै बिगोवै आपु
बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढीजार सो।

इसमें अनुप्रास तो है ही 'कुल को कुठार' में मेघनाद का साभिप्राय विशेषण होने से परिकर है 'साँपनि सों खेल मेल गरे छुराधार सो' में निदर्शना है और अन्त वाली पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार जली हुई बातों द्वारा व्यक्त हुआ है।

अन्य अलंकार

सबसे पहले विरोधाभास को लिया जाता है, जिसमें विरोध न होकर उसका

आभास-सा दिखलाई देता है। उदाहरण है—

दखें वर वापिका तडाग बाग को बनाउ
राग बस भो बिरागी पवनकुमार सो।

विरागी हनुमान का रागी बताकर विरोध दिखाया है पर विरोध न होकर विरोधाभास हो है क्योकि अनुरक्त होन पर अशोक वन को वे उजाडते ही क्यो ?

उत्तरकाण्ड के शकर स्तवन म तुलसी ने विरोधाभास को प्रयुक्त किया है और रुद्रदेव की विरोधाभासात्मक प्रकृति परिचय दिया है। भगवान् भूतनाथ का चरित्र ही कुछ ऐसा है जिसम विरोधी बातें भरी पडी है। उनकी विचित्र वेषभूषा, उनके विचित्र सगी साथी उनका विचित्र रूप और उनकी विचित्र लीलाएँ सभी ऐसी बातें हैं, जिनके देखन और सुनन म विरोध झलकता है।

बिषु पावकु ब्याल कराल गरें सरनागत तौ तिहु ताप न डाढे
भूत बेताल सखा भव नामु दल पल म भव क भय गाढे
तुलसीसु दरिद्रसिरोमनि सो सुमिरें दुख दारिद होहिं न ठाढे
भौन म भाग धतूरोइ आगन नागे के आग ह मागने बाढे।

शिवजी विष (कठ) पावक (नेत्र) तथा व्याल (गले) तीनो का धारण करते है पर उनकी शरण म आने वाला का कोई रोग नही लग पाता (रोग लगना चाहिए पर वास्तव म लगता नही है—यही विरोधाभास है)। इसी प्रकार उनका नाम तो भव है परन्तु भव के भया को भी दूर कर देत है दरिद्र शिरोमणि है जिनके स्मरण करने पर दुख व दारिद्र पलायन कर जात हैं। उनके भवन म भी कोई देन वाली वस्तु नही है फिर भी मागन वाला की कमी नही रहा करती।

इसके बाद प्रतीप अलकार को देखिए। इस अलकार मे उपमेय के सामने उपमान का निरादर किया जाता है। उदाहरण —

'आगे सोहै सावरो कुवरु गोरो पाछें पाछे
आछे मुनिवेष धरे लाजत अनग है।

मुनिया का सा अनाकर्षण वेष धारण करन पर भी कामदेव की सुन्दरता का निरादर किया गया है यही प्रतीप है।

सदेह का प्रयोग तुलसी ने कम किया है। जहा पर किया है वहा पर अपनी विराट अलकार-योजना का चमत्कार दिखला दिया है—

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानो
लक लीलिबे को काल रसना पसारी
कधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवारि सो उघारी है
तुलसी सुरेस चापु कधौं दामिनी कलापु
कधौं चली मेरु तें कृसानु सरि भारी है।

हनुमान की ज्वालमालाओ स युक्त पूछ का देखकर पहले कवि ने एक उत्प्रेक्षा दी है और फिर बाद म सन्देह की झडी लगा दी है। कवि का अनिश्चय जलती हुई

आग से युक्त पूछ के विषय में कभी धूमकेतु के रूप में प्रकट होना है तो कभी तलवार के रूप में, कभी इन्द्र धनुष के रूप में तो कभी बिजली की चमक के रूप में या कभी अग्नि की बहती नदियों के रूप में। एक स्थान पर बालधी को ही विन्ध्यपर्वत की दावाग्नि या कराल सूर्यों की गामुहिका कहा है—

बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्ही आगी
बिंधि की दवारि कैधौं कोटिसत सूर हैं।"

कभी-कभी कवि ऊंची उड़ानें भी भरा करते हैं जो उनकी अतिशय कल्पना की हुआ करती हैं। तुलसी ने भी उड़ानें भरी हैं और अतिशयोक्ति के साथ चित्रण किया है। सम्बन्धातिशयोक्ति का एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जाता है—

'सरजू बर तीरहिं तीर फिरें, रघुबीर सखा अरु बीर सब
धनुही कर तीर निषंग कसे कटि पीत दुकूल नवीन फबें
तुलसी तहि औसर लावनिता, दस चारि नौ तीन इकीस सबै
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पबै।'

शात के लिए अशात का कथन करने के कारण यहाँ अतिशयोक्ति है। भेदकातिशयोक्ति में और को और करके जो कथन किया जाता है उसका भी निरीक्षण कीजिए—

'धायो रे बुझायो रे कि बावरे हो रावरे या
और आगि लागि, न बुझावै सिंधु सावनो।

आग जो लंका में लगी थी कुछ और ही प्रकार की थी जिसको सिंधु और सावन का मेघ बुझा ही नहीं सकते। अक्रमातिशयोक्ति का भी उदाहरण लीजिए—

बीस भुज दस सीस खीस गए तबहिं जब
ईस के ईस सो बैरु कीन्हो।

यहाँ पर बीस भुजाओं और दस सिरों का गिरना रूप कार्य बैर करना रूप कारण के साथ ही साथ सम्पन्न हो रहा है। इसलिए यह अलंकार है।

निषेध या गोपन की जहाँ बात आती है वहाँ पर कवि अपह्नुति अलंकार का आश्रय लिया करते हैं। बहाना करके यदि कुछ छिपाया जाता है तो उसको कैतवापह्नुति कहते हैं। देखिए एक उदाहरण—

राम कोहु पावकु समीरु सीय स्वासु कीसु
ईस बामता बिलोकु बानर को ब्याजु हैं
कहै मालवान जातु धान पति ! रावरे को
मनहूँ अकाजु आन ऐसो कौन आजु है।'

बहाने की बात के साथ सीधे सरल शब्दों में चमत्कारपूर्ण सत्य व्यक्त कर देने वाले पर्यायोक्ति अलंकार को भी देखिये—

'बालि दलि काल्हि जलजान पाषान किए
कंत ! भगवंतु तें तउ न चीन्हे
बिपुल बिकराल भट भालुकपि काल से
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हे

आइगो कोसलाधीसु तुलसीस जेहि
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हे
ईम वक्सीस जनि खीस कर, ईस ! सुनु
अजहूँ कुल कुसल वदेहि दीन्हे ।'

ऊपर के कतवापन्हुति के उदाहरण म बहाना है पर सीधा सा है और यहाँ पर भी बहाना है, परंतु चमत्कार के साथ न्खिाया गया है। बात का घुमा फिराकर जहा कथन किया जाता है वास्तव म वही यह अलकार हुआ करता है। रावण की रानी मदोदरी न बात तो सीधी कही ह पर उसका कहने का ढग निराला है, जो कि बहान से लाया गया है। केवट के वचना म ना यह बहुत है। उसकी उक्तियाँ बहुत सीधी लगती हैं पर उनके भीतर का चातुय छिपा पडा है राम का कह गय उसके वचन देखिय—

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्या समुझाइहौं जू
तुलसी अवलव न और कछू लरिका केहि मानि जियाइहौं जू
वरु मारिए मोहि बिना पग धोएँ, हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ।"

केवट श्रीराम के पुनीत पगो का प्रक्षालन करना चाहता है और उसी के लिए वह एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू जसी उक्ति भी कहता है। कमर तक पानी और उसकी थाह दिखाने की बात उसके वाक्चातुय से भरा उद्गार है जिसम गाभीय भी है।

अब एक उन्हाहरण उस अलकार का न्यिा जाता है जिसम की ता जाती निन्दा है परतु वह बन जाती प्रशसा है। एसे अलकार को व्याजस्तुति कहा जाता है। एक ढग यह भी बहान से प्रस्तुत करने का ह। शिवजी की प्रच्छन्न प्रशसा ब्रह्माजी द्वारा इस तरह की गई है—

नागो फिर कहै मागनो देखि न खागो कछू जनि मागिए थारो
राकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुर जाचक जारो
नाक सवारत आयो हौं नाकहि नाहिं पिनाकिहि नकु निहोरो
ब्रह्मा कहै गिरिजा ! सिखवो पति रावरो दानि है बावरो भोरो।'

ब्रह्माजी ने पावती स शिकायत की है कि आप अपन पति को समझा दीजिए कि रका को स्वर्गाधिपति न बना द। मैं मदके लिए स्वग बनाते बनाते तग आ गया हू। लगता है कि ब्रह्माजी शिवजी की निन्दा कर रह हैं पर व एक प्रकार से उनका गुणगान ही कर रह हैं।

साभिप्राय विशेषण दकर तुलसी ने परिकर अलकार का भी प्रयाग किया है राक्षस स्त्रिया न बहुत बार रावण के लिए विशेषणा का व्यवहार किया है जो कि अभिप्राय-सापक्ष हैं। एक उन्हाहरण देखिए—

रावन की रानी जातु धानी विलखानी कहै
हा ! हा ! काऊ कहै बीस बाहु दस माथ सा

यहाँ बीस बाहु तथा दस माथ होना ही शब्द से अभिप्राय कहे गये हैं।

अब एक उदाहरण विशेषोक्ति का दिया जाता है जिसमें प्रबल हेतु या कारण के होते हुए भी कार्य सम्पन्न नहीं होता है—

बसत वक गढ लंकस नायक अछत
लक नहिं खात कोउ भात राध्यो।

लंकेश्वर जैसे बलशाली नायक के रहते हुए भी लंकावासी कोई भात नहीं खाता। इससे यह स्पष्ट है कि कारण प्रबल विद्यमान है परन्तु कार्य नहीं हो रहा। इसलिए विशेषोक्ति है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस उदाहरण को विभावना (तृतीय) का उदाहरण माना है जो कि ठीक नहीं लगता क्योंकि तृतीय विभावना का लक्षण है बाधा रहने हुए भी कार्य का होना। उक्त उदाहरण में कार्य तो हो ही नहीं रहा फिर उसके पूरा होने की बात भी कैसे कही जा सकती है। निश्चित रूप से विशेषोक्ति अलकार ही है।

विनिमय या परिवृत्ति अलकार का उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ तुच्छ वस्तु देकर उत्तम का या उत्तम वस्तु देकर तुच्छ का आदान प्रदान किया जाता है। भोलेनाथ को तुच्छ वस्तु देकर उत्तम की प्राप्ति कैसे हो जाया करती है इसी को इन पंक्तियों में प्रतिपादित किया गया है—

आक के पतौवा चारि फूल के धतूरे के द्व
दीन्हे ह्वै हैं बारक पुरारि पर डारिके।

यहाँ पर चार आक के पत्तों या धतूरे के दो फलों को शिवजी पर डालने से उत्तमोत्तम ऋद्धियाँ सिद्धियों की प्राप्ति कराई गई है।

अब उदाहरण अलकार पर भी दृष्टिपात किया जाय। यह अलकार वहाँ होता है जहाँ किसी सामान्य बात को विशेष से वाचक ज्यों-जैसे इत्यादि के द्वारा समता प्रदर्शित की जाती है। कुछ लोगों ने इस अलकार को उपमा के अन्तर्गत या उसका भेद मानकर अलग से अलकार मानने में आपत्ति की है परन्तु कई आचार्य उसे एक स्वतन्त्र अलकार के रूप में ही परिगणित करते हैं। यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है

तुलसी लखि कै गज केहरि ज्यों झपटे पटके सब सूर सलील
भूमि परे भट घूमि कराहत हाकि हने हनुमान हठीले।

जिस प्रकार हाथियों पर शेर सकुशल झपट्टा मारता है और उन्हें गिरा देता है उसी प्रकार हनुमान भी बाँके वीरों पर झपटे और घूम घूमकर उनको पृथ्वी पर सुलाने लगे। यद्यपि यह अलकार उपमा सा ही लगता है पर इसमें प्रयुक्त होने वाला ज्यों शब्द जान ही डाल देता है क्योंकि सामान्य से विशेष का ज्ञान कराने के लिए उसमें अनोखी क्षमता है।

कभी कभी एक ही पदार्थ या वस्तु को अनेक रूपों में वर्णित किया जाता है। इस अनेक विध-वर्णन का उल्लेख अलकार कहते हैं जैसे—

पालिबे को कपि भालु चमू जम काल करालहु को पहरी है
लक से बक महागढ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है

तीसर-ताम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है
नाथ भलो रघुनाथ मिले रजनीचर सेन हिए हहरि है।'

एक ही हनुमान को कपि और भालुओं का पालन वाला दुर्गम लङ्क-गढ़ का दहन वाला राक्षस रूप तीतरों का मारने वाला दिखलाया गया है। अतः उल्लेख अलंकार है।

नीर क्षीर की तरह अभेद रूप से जहाँ अलङ्कार मिल जाते हैं, वहाँ पर सङ्कर अलङ्कार कहा जाता है। रूपक और उपमा का एक सङ्कर देखिये—

'साहसी समीरसुनु नीर निधि लंघि लखि
लङ्क सिद्धि पीठ निसि जागा है मसानु सो
तुलसी बिलोकि महासाहस प्रसन्न भई
देवीसीय सारिखी, दियो है वरदान सो
वाटिका उजारि अच्छ धारि मारि जारि गढ़
भानु कुल भानु को प्रताप भानु भानु सो
करत बिसोक लोक कोकनद कोक कपि
कहै जामवंत आयो आयो हनुमान सो।

इस भाव साधना को लेकर रूपक बाँधा गया है जिसमें लङ्का सिद्धि स्थान है हनुमान साहसी साधक हैं सीता देवी हैं जिन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया है। सीता को देवी समान कहकर उपमा को लाया गया है। अन्तिम चार पंक्तियों में एक अन्य रूपक मूर्य को मानकर बाँधा है।

अन्त में उन दो अलङ्कारों को लिया जाता है जिनकी प्रचुरता कवितावली के सुन्दरकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में देखी जा सकती है। वे अलङ्कार हैं छेकोक्ति और अर्थव्यञ्जन। जब लोकोक्ति किसी कारण से प्रयुक्त की जाती है या उपमान बनकर आती है तब वही लोकोक्ति छेकोक्ति अलकार बन जाती है। किसी किसी के मत में छेकोक्ति में किसी का अपमान करना ही मुख्य माना गया है। उदाहरण है—

'लोक वेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई
बासी नरनारि ईस अंबिका सरूप है
कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि
सभासद गनप से अमित अनूप है
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं
फलै फूलै फलै खल सीदै साधु पल पल
खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप है।

इसमें लोकोक्ति तो है ही साथ ही दुर्जनों की जो निन्दा की गई है, उसमें छेकोक्ति भी है।

अर्थव्यक्ति या ध्वन्यर्थ व्यञ्जना एक अंग्रेजी अलकार है जिसको ओनोमटोपोइया कहते हैं। यह अलङ्कार ध्वनि के आधार पर ही अर्थ की व्यञ्जना कर देता है। इसमें

शब्दों का विधान इस प्रकार से होता है कि उसके द्वारा वर्णित वस्तु का बिम्ब उप स्थित हो जाता है और कवि जिस विशषभाव की व्यजना करना चाहता है, वह स्वयमेव प्रकट हो जाता है। शब्दा के द्वारा ऐसा नाद उत्पन्न किया जाता है जिससे श्रोता या पाठक को इस बात का बोध हो जाता है कि ध्वनि से अर्थ निकल रहा है और वह ध्वनि ही उसको समझाने के लिए यथेष्ट है। तुलसी को यह अलकार बहुत प्रिय है और अनेक उदाहरणो म ध्वनन ही उनके आन्तरिक अर्थ का ज्ञापन करा देता है—

> 'गान्यो कपि गाज ज्यों बिराज्यो ज्वाल जाल युत
> भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो
> 'धावो धावो धरो', सुनि धाए जातुधान धारि
> बारिधारा उलद जलद ज्यो न सावनो
> लपट झपट झहराने हहराने बात
> भहरान भट परयो प्रबल परावनो
> ढकनि ढकेलि पलि सचिव चल लै ठेलि
> नाथ ! न चलगी बलु अनल भयावनो।'

भगदड मच जाने पर रावण को धक्के दे दे कर ले जाने का अर्थ व्यजना यहाँ पर शब्दों के द्वारा भली भाँति हो रही है इसलिए यहाँ अलकार है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवितावली म कवि ने अपनी कविता कामिनी को सभी अलकारो से अलकृत किया है परन्तु उसको तीन आभूषण तो बहुत ही प्रिय है—अनुप्रास रूपक और उत्प्रेक्षा। अनुप्रासो के साथ म तो वह उस कामिनी को सदैव ही देखना चाहता है रूपको के साथ म वह उसे विशेष समारोहो पर ही देखना चाहता है और उत्प्रेक्षाओ के साथ म वह उसे सम्भव अवसरो पर ही विभूषित देखना चाहता है।

छन्द-विधान

जब किसी लय या गति विशेष म शब्दो को बाँध कर कोई रचना की जाती है तब उसे छन्द कहा जाता है। छन्द म अन्त्यानुप्रास का बहुत ही महत्व होता है क्योकि लय उत्पन्न करने म उसका हाथ रहता है। छन्द एक प्रकार का ढाँचा होता है जिसम शब्दो को फिट किया जाता है जिसके कारण सगीतात्मकता अपने आप ही आ जाती है। शब्दो का चयन ही कुछ इस प्रकार किया जाता है कि उनमे नाद निक लन लगता है। सगीत का समा तभी बधता है जबकि छन्द के ढाचे म शब्द थिरकते हैं और बिछलन उत्पन्न करके पाठक को अपनी गति के साथ पर बहान के लिए बाध्य कर दते हैं। छन्द के विषय म भिन्न भिन्न विद्वानो न अपने अपने विचार व्यक्त किय हैं। कुछ के मत यहाँ पर उद्धृत किय जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल न काव्य म रहस्यवाद नामक निबन्ध म कहा है कि 'छन्द वास्तव म बधी हुई लय के भिन्न भिन्न ढाचो का योग है जो निदिष्ट लम्बाई का होता है। लय स्वर के उतार चढाव के छोट छोट ढाचे ही है जो किसी छन्द के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं। छन्द द्वारा होता यह है कि इन ढाचो की मिति और इनके योग की मिति श्रोता श्रोताओ को ज्ञात हो जाती है जिसम वह भीतर ही भीतर पढ़न वाल के साथ ही साथ उसके नाद की गति म योग दता चलता है। अत छन्द के बधवा त्याग म हम तो अनुभूत नाद सौन्दय की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास दिखाई पडता है। कविवर सुमित्रानन्दन पत न एक स्थान पर कहा है कि छन्द तथा कविता के बीच बडा घनिष्ट सम्बन्ध ह। कविता हमारे प्राणो का सगीत है छन्द हृदयकम्पन कविता का स्वभाव ही छन्द म लयमान होना है।

छन्द कविता कामिनी का शरीर है। उसकी आत्मा रस और उसके आभूषण अलकार है। उसी प्रकार उसका शरीर छन्द है।

छन्द दो प्रकार के बतलाय गये ह—एक वर्णिक दूसरा मात्रिक। जो छन्द वर्णो के आधार पर पहचाने जाते हैं उनको छन्द शास्त्र म वर्णिक छन्द कहा गया है और जो छन्द मात्राओ के आधार पर जाने जाते हैं उन्ह मात्रिक कहा गया है। इन दोनो ही प्रकारो के छन्दो को क्रमश वत्त और जाति भी कहा जाता ह। मात्राओ का ज्ञान गुरु और लघु स होता है और गुरु तथा लघु का ज्ञान गणो म किया जाता है। तीन तीन अक्षरो को लकर छन्द शास्त्र के आचार्यो न गणो को बनाया ह जिनके आधार पर सरलता से दोनो ही प्रकार के छन्दो म आय वर्णों तथा मात्राओ को भली प्रकार स पहचाना जा सकता है। गण आठ मान गय हैं—यगण, मगण, तगण रगण जगण भगण, नगण, सगण। इनके लिए सस्कृत की यह पक्ति बहुत प्रसिद्ध है यमाता राज

मानसलगम्।' इनकी पहचान के लिए एक संस्कृत का श्लोक यहाँ दिया जाता है—

आदिमध्यावसानेषु, भजसा यान्ति गौरवं
यरता लाघवं यान्ति, म नौ तु गुरुलाघवम्।

अर्थात्—आदि मध्य और अवसान में भजसा—(भगण जगण और सगण) क्रमशः गुरु हुआ करते हैं क्योंकि भगण में आदि गुरु (SII) जगण में मध्य गुरु (ISI) और सगण में अन्त गुरु (IIS) होता है। इसी प्रकार से आदि मध्य और अवसान में यरता—(यगण रगण और तगण) क्रमशः लघु हुआ करते हैं क्योंकि यगण में आदि लघु (ISS) रगण में मध्य लघु (SIS) और तगण में अन्त लघु (SSI) होता है। इन छह के अतिरिक्त मगण में तीनों गुरु (SSS) और नगण में तीनों लघु (III) होते हैं। सभी गण तीन-तीन अक्षरों के मेल से बनाये जाते हैं। सुविधा के लिए एक चार्ट इन गणों का यहाँ बनाया जाता है जिससे उनके नाम अक्षर और चिह्न आदि का बोध सुगमता से हो सके—

नाम	प्रथम अक्षर	चिह्न	लक्षण
मगण	म	SS	सब गुरु
नगण	न	III	सब लघु
भगण	भ	II	आदि गुरु
जगण	ज	ISI	मध्य गुरु
सगण	स	IIS	अन्त गुरु
यगण	य	IS	आदि लघु
रगण	र	SI	मध्य लघु
तगण	त	I	अन्त लघु
गुरु	ग	S	केवल गुरु
लघु	ल	I	केवल लघु

इस परिचय के साथ कवितावली के छन्दों पर विचार करना प्रारंभ करते हैं।

कवितावली में दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। यद्यपि कवितावली में मुख्य रूप से कवित्त सवैया छप्पय और झूलना इन चार ही छन्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु फिर भी उनमें कौन सा वर्णिक है और कौन सा मात्रिक है इसका बतलाना भी अनिवार्य हो जाता है।

मात्रिक छप्पय

मात्रिक में पहले छप्पय को लिया जाता है। छप्पय छः पंक्तियों वाला छन्द है जो दो प्रकार के छन्दों के योग से बनता है। वे छन्द हैं—रोला और उल्लाला। रोला में २४ मात्राएँ होती हैं तथा ग्यारह व तेरह पर यति हुआ करती है जैसा कि उसकी परिभाषा से विदित है—

'रोला को चौबीस कला यति तेरह ग्यारह'

छप्पय में पहली चार पंक्तियाँ इसी रोला की रखी जाती हैं और अन्त में दो पंक्तियाँ उल्लाला की रखी जाती हैं। यह उल्लाला छन्द दो प्रकार का होता है—एक

मात्रिक सम छन्द व दूसरा मात्रिक अर्ध सम छन्द। मात्रिक सम छन्द म तरह-तरह मात्राएँ होती है और मात्रिक अर्ध सम म पन्द्रह व तरह मात्राएँ हाती हैं। दोना ही प्रकार क उल्लालाग्रा क लक्षण इस प्रकार है—

'उल्लाला तरह कला एरा दसवाँ लघु घला (१)
त्रिपमनि पन्द्रह धरिय कला सम तरा उल्लाल करा' (२)

'कवितावली' म दूसर प्रकार के उल्लाला के ही उदाहरण है जिसम १५ १३ पर यति होती है। नीचे छप्पय का मात्रा निर्देश-पूवक उदाहरण दिया जाता है।

ऽ ।।ऽ। ।।।ऽ ऽ।।। ।। ।। ऽऽ
का न क्रोध निरदह्यो काम बस केहि नहिं कीन्हो
ऽ । । ।।ऽ। ऽ। ऽ।। ।। ऽऽ
का न लाभ दढ फद बाधि त्रास न करि दीन्हो
ऽ।।।।। ।। । ।।। ।। ऽ। ।।।।।
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि नयन सर
ऽ।। ।।।। ऽ। ।ऽ।ऽ ऽ। ऽ। ।।
लोचन जुत नहिं अध भया श्री पाइ कौन नर
।। ऽ। ऽ। ।। ऽ।।ऽ । ऽ। ऽ ।।।
सुर नाग लोक महि मडलहु का जु मोह कीन्हीं जय न
।। ।।।ऽ। ऽऽ। ।। ।ऽ। ऽ।। ।।।
कह तुलसि दासु सो ऊबर जेहि राख रामु राजिव नयन

पद म जेहि और केहि के जे और क पर दो-दो मात्राएँ होनी चाहिए परन्तु पन्त समय उन पर गुरु का सा बल नही पडता, इसलिए दो दो मात्राएँ नही लगाई गई हैं। ऐसा प्राय हो जाता है और कभी-कभी केवल लय बध जाने पर ही मात्राग्रा की परिगणना की जाती है। दूसरी बात यह है कि अन्तिम पक्ति म दो मात्राएँ अधिक बढती हैं। इसके लिए अगर आग का कह शब्द हटा द और लय के पढें तो मात्रा की कमी भी नही रह जावेगी और कह शब्द की अनुपयुक्तता भी स्पष्ट रूप स दिखलाइ पड जावगी।

झूलना

यह कवित्त की भाति आठ पक्तियो वाला छन्द है। इसम ३७ मात्राएँ होती है और २० तथा १७ पर यति होती है। कवितावली म इस छन्द का प्रयोग कम ही हुआ है। एक उदाहरण है—

ऽ। ऽ ऽ। ।। ऽ। ऽऽ। ।।
कौन की हाक पर चौंक चडीसु विधि
ऽ। ।।। ।। ।ऽ। ।।। ऽऽ
चन्द कर थकित फिरि तुरग हाँके

S I S S I I I S I I I S I S
कौन के तज बलसीम नट भीम स

S I S I I I I I I I I S S
भीमता निरखि कर नयन ढाके

S I I I S I S I I I I I I I I I I
दास तुलसीस के बिरद बरनत बिदुष

S I I I S I I I S I S S
बीर बिरदत बर बरि धाँके

S I I I S I S S I I S I I I I I I
नाव नरलोक पाताल कोउ कहत किन

I ऽ I I S I S S I S S
कहा हनु मान से वीर बाँके ।

वर्णिक कवित्त

इसको घनाक्षरी और मनहरण के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें ३१ वर्ण होते हैं तथा १६ व १५ पर यति हुआ करती है अन्त में गुरु वर्ण का होना आवश्यक है। कवितावली में इसका ही प्राधान्य है और अन्य छन्दों की अपेक्षा इसमें ही अधिक पदों की रचना हुई है। इसके (घनाक्षरी) कई भेद हैं जैसे—रूप घनाक्षरी जलहरण और देव घनाक्षरी आदि। कवितावली में रूप घनाक्षरी के पद कम ही हैं। नीचे कवित्त (घनाक्षरी) और रूप घनाक्षरी के उदाहरण दिए जाते हैं—

(७+६) 'पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे
(६+६) केवट की जाति कछू बेद न पढ़ाइ हौं
(८+८) सबु परिवारो मेरो याही लागि राजा जू हौं
(६+६) दीन वित्तहीन कैसें दूसरी गढ़ाइहौं
(८+८) गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी
(८+७) प्रभु सों निषाद ह्वै कै बादु ना बढ़ाइहौं
(८+८) तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं
(६+६) बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं।

रूप घनाक्षरी

इसमें ३२ वर्ण होते हैं तथा १६ १६ पर यति होती है। इसके अन्त में गुरु लघु (ऽ ।) का भी विधान है। जैसे—

(७+६) 'प्रभु रुख पाइ कै, बोलाइ बाल घरनिहि
(६+१०) बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि
(६+१०) छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जू को
(७+८) धोइ पाय पियत पुनीत बारि फेरि फेरि
(८+८) तुलसी सराहैं ताको भागु सानुराग सुर

(६+१०) बरपैं सुमन, जय जय कहैं टेरि टरि
(६+८) विविध सनेह सानी, वानी असयानी मुनि
(७+६) हँसैं राघौ जानकी लखन तन हरि हेरि।

सवया

यह भी वणवत्त है और वर्णों के आधार पर ही इसका भी निणय किया जाता है। इस छन्द के कई भेद है, यथा—मन्दिरा सुमुखी मत्तगयद, सुन्दरी, दुर्मिल, मुक्तहरा, किरीट आदि। कवितावली म मत्तगयद दुर्मिल और किरीट सवैया का ही अधिकाधिक प्रयाग हुआ है। नीचे इनके उदाहरण दिए जात हैं जिसस इनका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा।

मत्तगयद—यह २३ अक्षरा वाला छन्द है जिसम चार ही पक्तियां होनी हैं और प्रत्येक म सात भकार (ऽ।।) व अन्त म दो गुरु (ऽऽ) क आने की विधि है। लक्षण व उदाहरण इसका निम्न प्रकार स है—

'सात भकार गुरु युग हो जब मत्तगयद कहैं तब ताको
दूलह / श्रीरघु / नायक / न दुत / ही सिय / सुदर / मदिर / माही
गावति / गीतम / बमिलि / सुन्दरि / वेद जु / वा जुरि / विप्रय / ढाही
राम का / रुपुनि / हा रति / जानकी / कक्न / के नग / की पद / छाही
यातेंस / बैं सुधि / भूलिग / ई कर / टेकिर / ही पल / टारति / नाही।

सवया छन्द की रचना गणा का विचार रख के की जाती है और इसके पठन म तभी आनन्द आना है जब कि तीन तीन शब्दो के खण्डा को लेकर पढा जाय। दूसरी पक्ति म यहा पर 'वि' शब्द लघु लगता है परन्तु जब हम विप्र शब्द का बोलन हैं तो प्र स पहले जो प की ध्वनि भी निकलती है उसी क कारण 'वि' गुरु ही माना जायगा। इसी प्रकार अन्तिम पक्ति के प्रारम्भ म 'तें' गुरु लगता है पर लय म वह लघु ही है नहा तो दो गुरु हान स भगण नही बन सकता था।

दुर्मिल—यह छन्द २४ वर्णों के याग से बनता है तथा आठ सगण (।।ऽ) स इसका निर्माण हाता है। इसका लक्षण व उदाहरण नीचे ह—

सगणाष्टक का कहत हैं कवि अति दुर्लभ दुर्मिल चन्द्रकला
अपरा / ध अगा / ध भए / जन तें / अपने / उर आ / नत ना / हिंनजू
गनिका / गज गी / ध अजा / मिल के / गनि पा / तक पु/ज सिरा / हिंनजू
लिएबा / रकना / म सधा / म दियो / जिहिंधा / म महा / मुनिजा / हिंनजू
तुलसी / भजु दी / न दया / लहिरे / रघुना / थ अना / थ हिंदा / हिंनजू

किरीट—यह भी चौबीस, अक्षरा वाला छन्द है परन्तु इसम आठ भकार (ऽ।।) होते है। दुर्मिल और किरीट म यही अन्तर है कि दुर्मिल म आठ सगण होत हैं जबकि किरीट म आठ भगण। दूसरे शब्दा मे वह तो यह भी कह सकते हैं कि दुर्मिल म आने वाल खण्डा म अन्तिम वण गुरु होता है और किरीट के खण्डा म प्रथम वण गुरु होना है। किरीट का लक्षण व उदाहरण है—

'आठ मकार लस सु किरीट, सवयन म सिर मौर कहावत
जा के बि / लोकत / लोकप / हात बि / साकल / हैं सुर / लोग सु / ठौरहि
सो कम / ला तजि / चचल / ता करि / कोटिक / ला रिझ / व मुर / मौरहि
ता काक / हाइ क / है तुल / सी तूल / जा हिन / मागत / कूकुर / कौरहि
जानकि / जीवन / को जनु / ह्व जरि / जाउ सा / जीह जा / जाचत / औरहि
पद म आए हुए के, को, तू सो जो को तघु की भाँति ही लय म पढा जायेगा।

भाषा और शैली

तुलसी का प्रादुर्भाव जिस समय हुआ उस समय दो ही भाषाएं काव्य रचना के लिए अधिक प्रचलित थीं। एक थी ब्रजभाषा और दूसरी थी अवधी भाषा। अवधी का प्रयोग तो केवल कुछ प्रेमाख्यानों का प्रणयन करने वाले प्रेममार्गी कवि कर रहे थे परन्तु ब्रजभाषा का माधुर्य और लालित्य सब को आकृष्ट किए हुए था। अधिकतर कवि उस काल ही अपने काव्य की भाषा बनाया करते थे और उस भाषा में काव्य रचना करना अपना सौभाग्य समझा करते थे। कवि चाहे किसी प्रान्त से सम्बन्ध रखते हों काव्य के लिए वे ब्रजभाषा को ही चुना करते थे। सूरदास अपने 'सूरसागर' के द्वारा सौरभ बिखेर कर ब्रजभाषा को और भी सुवासित कर ही रहे थे। कविवर भिखारीदास ने एक पद में यह बताया है कि ब्रजभाषा में लिखने वाला ब्रजभाषा-भाषी ही नहीं हुआ करता था, अपितु अन्य भाषाभाषी भी ब्रजभाषा को अपनाया करता था और उसे सदैव निखारा करता था—

'सूर केशव मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म
चिंतामणी मतिराम भूषण सुजानिए
नीलाधर सेनापति निपट निवाज निधि
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देव मानिए
आलम रहीम रसखान सुन्दरादिक
अनेक सुमति भय कहाँ लौं बखानिए
ब्रजभाषा हेत ब्रजभाषा ही न अनुमान
ऐसे ऐसे कविन की बानी ते जानिए।

तुलसी ने दोनों ही भाषाओं का प्रयोग सफलता से किया है। प्रेमाख्यानक कवियों ने जिस ठेठ अवधी का मिठास अपने काव्यों में दिखाया उस को तुलसी ने परिमार्जित किया और साहित्य की भाषा बनाया। इसी प्रकार ब्रजभाषा से भी तुलसी अपरिचित न रह सके और उसको भी काव्य में प्रयुक्त किया। यदि रामचरितमानस और बरवैरामायण में उन्होंने अवधि को अपनाया तो कवितावली और गीतावली आदि में ब्रजभाषा को प्रश्रय दिया। भक्त प्रवर सूरदास के बाल-वर्णन से प्रभावित होकर जहां बाल वर्णन तुलसी ने किया वहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा को अपनाने का मोह वे संवरण नहीं कर सके और इसी का प्रतिफल यह हुआ कि एक नहीं कई अपने काव्य ग्रंथों में उन्होंने ब्रजभाषा को अपनाया है। यह ब्रजभाषा का अपना महत्व है। तुलसी जैसा महाकवि यदि चाहता तो अवधि को छोड़ कर ब्रजभाषा को तनिक भी नहीं अपनाता। आज यद्यपि खड़ीबोली काव्य भाषा स्थिर हो चुकी है

परन्तु ब्रजभाषा का रसीलापन अब भी काव्य प्रेमियों के लिए वैसा ही बना हुआ है जैसा कि पहले था। बहुत से खड़ीबोली के प्रशंसकों ने राधिका कन्हाई की भाषा को काव्य भाषा के पद से अपदस्थ करने का भगीरथ प्रयत्न किया है और नये युग की नई भाषा खड़ीबोली का स्वागत करने में अपूर्व उत्साह दिखलाया है, परन्तु फिर भी राधामाधव के केलि करील कुंजों और तमाल-तरुओं में आकर ही उनके मन शांति ग्रहण करते हैं और एक घड़ी विराम पाकर ही हरे भरे होते देखे जाते हैं। यहाँ पर पहले व्याकरण की दृष्टि से 'कवितावली' में ब्रजभाषा का प्रयोग-बाहुल्य दिखलाया जाता है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में हौं शब्द 'मैं' के अर्थ में प्रयुक्त होता है और सूर आदि ब्रजभाषा के कवियों ने तो इसका अत्यधिक प्रयोग किया है। कवितावली में भी अनेक स्थानों पर यह 'मैं' के अर्थ में आया है—

तूं रजनी चर नाथु महा रघुनाथ के सेवक को जनु हौं हौं

— — —

बरु मारिए मोहि बिना पग धोएँ हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू

— — —

ब्रजभाषा में 'ओ' को शब्दों के अन्त में लगा कर बोलने की प्रथा बहुत है और इस प्रकार के शब्दों की कवितावली में कमी नहीं है। कुछ उदाहरणों के द्वारा उनका परिचय यहाँ पर उपस्थित है—

एक करें धौज एक कहैं काढ़ौ सौज एक
औंजि पानी पीकै कहैं बनत न आवनो
एक परे गाढ़, एक डाढ़त ही काढ़ एक
देखत हैं ठाढ़े कहैं पावकु भयावनो
तुलसी कहत एक नारे हाथ लाए कपि
अजहूँ न छाड़ बालु गाल को बजावनो।

सत्य तो यह है कि 'औ' का उच्चारण ओ के रूप में ही अधिक होता है और तभी शब्दों के बोलने में मिठास का अनुभव होता है। सिरानो मायो घनो परासो आदि शब्दों का यदि हम उचित ढंग से उच्चारण करें तो ओ की ध्वनि ही निकलती सुनाई देगी और तभी ब्रजभाषा के स्वरूप की पहचान हो सकेगी।

ब्रजभाषा में बहुवचन बनाने के लिए अन्त में 'न' को जोड़ा जाता है। न जोड़ कर बनने वाले शब्दों को हम इन उदाहरणों में देख सकते हैं—

सन के कपिन को को गने मुदं
महाबल बीर हनुमान जानी।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै
जब धनुधारि ह्वै है मन अनुमानि कै।

कायर कूर कपूतन की हद तउ गरीबनेवाज ने वाजे ।
दऊ तौ दयानिकेत देत दादि दीनन की
मेरे वार मेरें ही अभाग नाथ ढील की ।
ईसन के ईस महाराजन के महाराज
देवन के देव, देव ! प्रानन के प्रान हौ !"

ब्रजभाषा में 'होना' क्रिया के लिए भयो और 'भयो' तथा भो हो, हुतो तथा हुते शब्दों का प्रयोग होता है। नीचे दिए जाने वाले उदाहरणों से यह तथ्य स्वयं ही प्रकट हो जायेगा—

'सेवक एक तें एक अनेक, भए तुलसी तिहुं ताप न डाढे ।
स्वारथ को परमारथ को परिपूरन भो फिर घाटि न होसी ।
सगुनसुमामिनि माई भली दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ।

ब्रजभाषा में मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो का प्रयोग भी पारस्परिक व्यवहार के लिए बहुत होता है। ये शब्द ब्रजभाषा के अपने शब्द हैं जो कि उसके सौंदर्य की वृद्धि किया करते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है—

जनक की सिया को, हमारो तेरो तुलसी को
सब को मानतो ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री ।
सादर बारहिं सुभायँ चितैं तुम्ह त्यौं हमरो मन मोहैं ।

अवधी भाषा

'कवितावली' में ब्रजभाषा के स्वरूप की अधिकता होने के कारण हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उसमें ब्रजभाषा ही है और अवधी बिलकुल भी नहीं है। तुलसी ने अवध प्रदेश में भी तो अपने जीवन का अधिकांश भाग बिताया था और 'रामचरितमानस' जैसे प्रबंध काव्य की रचना करके अवधी के प्रति अपना मोह प्रदर्शित किया था फिर 'कवितावली' में वे कैसे निस्संग हो सकते थे ? यही कारण है कि 'कवितावली' में अवधी-स्वरूप भी विद्यमान है। नीचे व्याकरण की दृष्टि से विवरण उपस्थित किया जाता है जिससे इस भाषा का परिचय प्राप्त हो सके।

अवधी भाषा में बहुवचन बनाने के लिए शब्द के अंत में 'न्ह' लगाया जाता है। 'कवितावली' में इस प्रकार के उदाहरण हैं—

काल कराल नृपालन्ह के धनु भंगु सुनै फरसा लिए धाए।

अवधी भाषा की एक विशेषता यह भी है कि उसमें शब्दों में उकार का प्रयोग बहुत होता है जिससे कि कोमलता और मृदुता बढ़ जाया करती है। ऐसा लगता है कि इसमें शब्द अपने काठिन्य को छोड़कर सारल्य की ओर चल पड़ता है। 'कवितावली' में इस विशेषता को एक उदाहरण देकर दिखलाया जाता है—

'राम कोहु पावकु समीरु सीय स्वासु कीसु
ईस बामता बिलोकु बानर को ब्याजु है।

उदाहरण में आये हुए अनेक शब्द अकारांत न होकर उकारांत बन गये हैं।

एक ही उदाहरण म सात बार उकार के प्रयोग स यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि अवधी भाषा म उकार के प्रयोग की कितनी बहुलता और अधिकता ह ।

अवधी म शब्दा के अन्त म ऐसा लगाने की प्रथा भी बहुत है और उसी का परिणाम यह हुआ है कि कवितावली म अनेको स्थला पर एस श ा का प्रयोग हुआ है। उदाहरण रूप म ये शब्द देखिए—

साथ ही साथ उकारान्त शब्द भी स्वत आ गये है। जहा हित स्वामि न सग सखा वनिता सुत बधु न बापु न मया

कही कही पर इया भी लगाया जाता है। कवितावली म ऐसे शब्द बहुत ही अल्प मात्रा म है। नीचे दो पक्तिया दी जाती है जिनम मरो से मरिया और कारो (काला) से 'करिया' बनाया गया है पक्तिया ये है—

तिन्ह सोने के मेरु स ढेर लहे मनु तौ न भरो घरु प भरिया
तुलसी दुखु दूनो दसा दुहूँ देखि कियो मुखु दारिद को करिया ।

अवधी म म के लिए माह मह माहो, महु जस श ा का व्यवहार होना है। एक स्थान पर माही का प्रयोग तो अवश्य देखा जा सकता है —

दूलह श्री रघुनाथु बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।

एक स्थल पर मो भी मैं का अर्थ प्रकट करने क लिए ही आया है—

'मन मो न बस्यो अस बालकु जौं तुलसी जग म फलु कौन जिए ।

'माहँ का प्रयोग भी इसी प्रकार का एक प्रयोग समझना चाहिए —

कौसिक विप्रवधु मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माहँ ।

माह को महा बनाकर इस पक्ति म प्रयुक्त किया गया है —

'प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा प्रकट नर क हरि खम महाँ ।

व्रज अवधी शब्द

व्याकरण की दृष्टि स विचार करन क उपरान्त अब उन शब्दो की ओर सकेत करना भी आवश्यक है जो कि स्वतन्त्र रूप स इन दोनो भाषाओ क हैं। पहल व्रज भाषा क शब्दो का लेत हैं। ब्रजभाषा क कल (चैन) तर (नीचे) बयार (हवा) सतराना (ऐंठ कर टेढ़ा टढ़ा जाना) ठौर (स्थान) नाइ (तरह) सेंत मत (बिना मोल क या बिना पस क) आदि अपन शब्द हैं जिनका प्रयोग तुलसी न कवितावली म किया है। सोदाहरण देखिए—

साहसी ह्व भव पर गहगो मराति मान
चितवत चहूँ ओर औरनि को कबु गा।

— — —

पचवटी बर पन कुटी तर बठ है रामु सभाय सुहाए ।
पाछि पसउ बयारि करौ

— — —

अवधी

इनके घालि (घलुआ), पँवारो (यश कीर्ति) खपुआ (कायर या भगोड़े), धारि रजायस रजाइ राज आइजा (सेना या समूह) कलोरे (बछड़े), से (वे) तन (ओर) आदि शब्दों को भी सोदाहरण उपस्थित किया जाता है—

वीर करि केसरी कुठार पानि मानी हार
तरी कहा चली विड ! तोम गन घाति का ?' (i)

—— —— ——

'वीरवडा विरुदत बली अजहू जग जागत जासु पवारो। (ii)
तुलसी करि केहरिनादु भिरे भट खग्ग खगे खपुआ खरको।

अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

भोजपुरी

इस भाषा से भी हमारे कवि तुलसीदास का परिचय था। यह तो प्रसिद्ध ही है कि तुलसी ने काशी में बहुत दिनों तक वास किया था। वहाँ रह कर उन्होंने भोजपुरी के शब्द भी ग्रहण किए और सीखे होंगे यह भी निस्सन्देह है क्योंकि इस भोजपुरी भाषा का क्षेत्र भी पूर्वी उत्तर प्रदेश है जिसमें गोरखपुर और देवरिया जिले प्रमुख हैं। इस भाषा में आप के लिए रावर शब्द का व्यवहार होता है। 'कवितावली' में यह प्रयोग अधिकता के साथ उपलब्ध होता है—

रावरो कहावौं गुन गावौं राम ! रावरोई
रोटी द्वै पावौ हौं राम ! रावरी ही कानि हौ।
तुलसी के ईस राम रावर सो साची कहौं
बिना पग धोएँ नाथ ! नाव ना चढ़ाईहौं।'

रावर की तरह राउर का प्रयोग भी एक स्थल पर हुआ है—

वाटिका उजारि अच्छु रच्छकनि मारि भट
भारी भारी राउरे के चाउर से काढ़िगो।'

भोजपुरी में सोने के लिए सूतना या सूतहि शब्दों का प्रयोग होता है। कवितावली में ऐसे प्रयोग कम ही हैं। एक स्थान पर यह प्रयोग द्रष्टव्य है—

'प्रीति राम नाम सो प्रतीति रामनाम की
प्रसाद राम नाम के पसारि पाय सूतिहौं।

बुन्देली

इस भाषा के कतिपय रूप तुलसी की भाषा में उपलब्ध होते हैं। यह भाषा ब्रजभाषा से बहुत मिलती जुलती है परन्तु इसकी कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं जिन का दिग्दर्शन यहाँ पर उदाहरणों सहित कराया जाता है। इसकी एक विशेषता है कि इस में कुछ क्रियाओं के अन्त में 'बी' लगाने की प्रथा है जिससे कि भविष्य काल का

रूप बन जाया करता है। 'कवितावली' से दो पंक्तियां उद्धृत हैं—

'तुलसी की बलि बार बार ही सभार कीबी'

व को जोड कर कीबे' का जो प्रयोग हुआ है वह भी इसी प्रकार का है—

"कामु कोहु लाइ क देखाइयत आंखि मोहि
एते मान अकसु कीबे को आपु आहि को।"

बुंदेली भाषा की एक विशेषता 'ड के स्थान पर र प्रयुक्त करने की भी बताई जाती है परन्तु यह केवल बुंदेली की ही हो सो बात नहीं है। ब्रजभाषा म भी ऐसा प्रयोग सदा ही देखा जाता है। ड की परुषता को बचाने वाला मे आधुनिक कवि भी आ जाते हैं और र' का प्रयोग प्राय करते देखे जाते हैं। उदाहरण है—

काननु उजारयो तो उजारयो न बिगारियो कछु
बानरू बिचारो बाधि अयो हठि हार सो।'

इन बुंदेली रूपो के अतिरिक्त बुंदेली के मुहावरे भी कवितावली म आये हैं। भांडिगो शब्द को लेकर एक मुहावरा है जिसका अर्थ है घूमघूम कर देखना', क्योंकि भडया उस भाषा म चोर को कहते है—

'कहे की न लाज पिय ! अजहूं न आये बाज
सहित समाज गढ राट कैसो भांडिगो।

राजस्थानी

इस भाषा के शब्द और क्रिया रूप भीतुलसी के साहित्य म उपलब्ध होत हैं। 'कवितावली म 'म्हाको' शब्द का प्रयोग मिलता है—

दास तुलसी सभय बदति मयनंदिनी
मदमति कत ! सुनु मत म्हाको।

बगला

बगला के शब्द और क्रिया रूप भी कवितावली म सरलता से खोजे जा सकते हैं क्योंकि दो एक स्थानो पर उनका प्रयोग हुआ है। सकार (सकाल या प्रात काल) का उदाहरण यह है—

अवधेस क द्वारें सकारे गई सुत गोद क भूपति ल निकस।

सकना क्रिया बगला म निमन क अर्थ म प्रयुक्त हुआ करती है। यहां पर भी वह उसी रूप म देखा जा सकती है—

'कहो एम साहब की सबी न खटाइ का।

गुजराती

बगला की ही तरह गुजराती भाषा क कुछ प्रयोग 'कवितावली म विद्यमान हैं। एक शब्द है दरिया जिसका अर्थ फारसी म नदी है परन्तु गुजराती म यह शब्द समुद्र के अर्थ म व्यवहृत होता है। सम्भवतः है तुलसी न भी गुजराती क अनुकरण पर इस शब्द का समुद्र क अर्थ म ही प्रयुक्त किया है। उदाहरण इस प्रकार है—

तजि ग्रास भा दासु रघुप्पति को,
दसरत्थ को दानि दया दरिया।'

'मूकना' क्रिया गुजराती म छोडना के ग्रथ म ग्राती है, जो कि कवितावली म इस प्रकार है—

'ग्रब जोर जरा जरि गातु गयो
मन मानि गलानि कुबानि न मूको।'

मराठी

इस भाषा का 'फोक्ट' शब्द 'कवितावली' म कई बार व्यवहृत हुआ है जैसे—
'सबु लागत फोक्ट भू ठ जटो।'

तुर्की

तुर्की के वरक (झडा) का प्रयोग भी तुलसी ने किया है जसे—
वरख-वाह वसाइए प,
तुलसी घरु व्याध ग्रजामिल खेरें।'

शैली

ग्रभिव्यक्ति के ढग का नाम शली है, जिसे ग्रग्रेजी में स्टाइल (Style) कहत हैं। प्रत्यक कवि की ग्रभिव्यक्ति भिन्न होनी है, जिसके ग्राधार पर यह निणय किया जाता है कि कवि का शली कसी है। उसी कवि की हो सकती है ग्रय की नही। तुलसी ने किसी ग्रभिव्यक्ति के लिए किसी एक माध्यम को नही ग्रपनाया परन्तु एक ग्राराध्य को ग्रवश्य ग्रपनाया जिससे उस ग्राराध्य का वण्य विषय देख कर हम सहज ही यह ग्रनुमान कर लेते हैं कि यह शली तुलसी की ग्रपनी शली है। 'रामचरितमानस' म यदि दाहा चौपाई शली है तो कवितावली म कवित्तसवया की शली को कवि ने ग्रपनाया है ग्रौर उसी के कारण इस ग्रथ का नाम कवितावली (कवित्ता का सग्रह) या कवितावली है। यह कवित्त सवया वाली शली ग्रादिकाल की शली है जिसम चारणा ग्रौर भाटों ने ग्रपन ग्रपन चरित-नायका का ग्राजस्वी वणन उपस्थित किया है। तुलसी न भी ग्रपन ग्राराध्यराम राजाराम का प्रभावशाली वणन करने के लिए इसी शली को उपयुक्त समझा ग्रौर उनकी वीरतापूण प्रतिमा का भव्य प्रदशन किया। युद्ध के जो भीषण चित्र उपस्थित किए गय हैं, वे भी इसी शली के बल पर कविता-वली म दिखलाई पडते हैं। तुलसी न छप्पय का इस भाति ग्रपना लिया है कि स्तोत्रा के लिए भी ग्रपन प्रिय छप्पय का ही पल्ला पकडा है ग्रौर वही सफलता पाई है जो समर का स्वरूप उतारन म पाई है।

राम के गुणगान म भी कवि न पदशली का न ग्रपना कर छप्पय शली ही चुनी है ग्रौर राम पराक्रमी रूप उपस्थित किया है—

'जय ताडका सुबाहु मथन मारीच मानहर—
मुनि मख रच्छन दच्छ सिला तारन करुनाकर

नृपगन-बल मद सहित सभु का दंड विहडन
जय कुठारधर दर्पदलन दिनकर कुल मडन
जय जनक नगर आनन्द प्रद सुखसागर सुषमा भवन
कह तुलसीदासु सुरमुकुटमनि जय-जय जानकि रवन।"

गुण

गुणों का रस का सहज धर्म कहा गया है क्योंकि इन्हीं के द्वारा भाषा म रसानुकूलता आती है। आचार्यों ने गुणों की संख्या भिन्न भिन्न निर्धारित की है परन्तु देखा जाय तो तीन गुणों में सबका अन्तर्भाव हो जाता है। वे तीन गुण हैं— माधुर्य ओज व प्रसाद। इन तीनों के आधार पर भाषा की रसानुकूलता का दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

माधुर्य मधुरता का सर्जन करने वाला गुण माधुर्य है। आचार्य विश्वनाथ ने चित्त की आह्लादमयी अवस्था का माधुर्य का नाम दिया है। यह गुण वहीं पर पाया जाता है जहाँ कर्कशता नाम मात्र को नहीं होती वर्ण ऐसे प्रयोग म लाये जाते हैं जो वातावरण को मृदु और चित्त को द्रवीभूत करें। इसीलिए माधुर्य गुण को लाने के लिए कोमलकान्त शब्दावली का प्रयोग करते हैं तथा क त प म ग च ज फ व आदि अक्षरों का ही व्यवहार किया करते हैं। यह गुण इसी कारण को मल रसों—शृंगार हास्य करुण और शान्त—म विशेष रूप से पाया जाता है। इसकी प्रकृति भी बहुत कोमल है। कवितावली के बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड म इस गुण की प्रचुरता है, अन्यत्र भी कहीं-कहीं पर इसके उदाहरण विद्यमान है।

बासव बरन विधि बनन सुहावनो
दसानन को काननु बसत को सिंगारू सो
समय तुरान पात परत उरतनातु
पालत लालत रति मर को विहारु सो
देखे वर बापिका तडाग बाग को बनाऊ
राग बस भो विरागी पवन कुमारू सो
सीय की दसा विरप असोक तर।

(सुन्दरकाण्ड)

ओज माधुर्य के विपरीत है—ओज। इसमें वर्णवृत्त शब्दों को प्रधानता दी जाती है और उनके प्रयोग से कठोरता उत्पन्न की जाती है। ट ठ ड ढ ण ध द आदि कठोर वर्णों का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त द्वित्ववर्णों संयुक्तवर्णों रेफ वर्णों को भी प्रधानता दी जाती है जिससे चित्त म चमक पैदा हो कानों मे भीषण कोलाहल भर जाय दिल दहल उठे और मन म आन्दोलन का प्रश्न समा जाय। स्थायी प्रभाव बनाये रखने के लिए समास पद्धति का सहारा भी बहुत लिया जाता है। कवितावली म विशेष रूप से ऐसे वर्णन लंकाकाण्ड म है तथा सुन्दर काण्ड और बालकाण्ड म भी थोड़ी सी छटा है। बालकाण्ड का एक छप्पय यह देखिए

जिसमें धनुष की चड ध्वनि व्यक्त है—

'डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बय समुद्र सर
व्याल वधिर तहि काल, विकल दिगपाल चराचर
दिग्गयन्द लरखरत परत दसकंधु मुक्ख भर
सुर बिमान हिमभानु भानु संघटत परस्परा।'

शब्दों से निकलने वाली ध्वनि ही यह बतला देने के लिए पर्याप्त है कि धनुष जब दो खंडों में टूटा तो किस प्रकार से उसकी प्रचंडता से ब्रह्मांड दहल गया, कमठ आदि कलमला गए और ब्रह्मा विष्णु महेश का आसन कंपायमान हो गया।

प्रसाद इस गुण की प्रसन्नता और सरलता ही इसके नाम को सार्थक करती है। इसमें कवि ऐसी सरल स्वच्छ प्रसन्न और सुकुमार शब्दावली का प्रयोग करता है कि पाठक उसको सुनकर ही प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है। निश्छलता इस गुण की एक महती विशेषता है। मुहावरों शब्दों के आ जाने से रचना की सबोधना में किसी प्रकार की कमी नहीं रह जाती है। ऐसी रचना में कवि किसी अलङ्कृति के मोह में भी नहीं पड़ता अपितु सहज स्वाभाविकता के कारण पाठक के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। इस गुण के उदाहरण अधिकतर 'उत्तरकाण्ड' में हैं और और देखा जाय तो बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड भी अछूते नहीं हैं। उत्तरकाण्ड का एक पद देखिए, कितनी प्रसन्न शैली में है—

'नाम महाराज के निबाह नीको कीजे उर
सबही सोहात, मैं न लागनि सुहात हौं
कीजै राम! बार यहि मेरी ओर चख कोर
ताहि लागि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं
तुलसी बिलोकि कलिकाल की करालता
कृपालु को सुभाउ समुझत सकुचात हौं
लोक एक भांति को त्रिलोकनाथ लोकवस
आपनो न सोच स्वामी सोचहिं सुखात हौं।

पद को पढ़ लेने पर अर्थ की दुरूहता का आभास भी नहीं होता। शब्द धारा बहती चली जाती है और अर्थ को प्रकट करती चली जाती है। बीच में रुकने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और न समझने के लिए प्रयास ही करना पड़ता है।

व्यंग्य तथा वाक्-कौशल

काव्य में व्यंग्य का यह महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि शब्द की एक शक्ति-व्यंजना से निकलने वाले अर्थ को भी व्यंग्य कहा जाता है। परन्तु यहां पर व्यंग्य का प्रयोग अंग्रेजी के सटायर (Satire) के रूप में ही किया जा रहा है। कवितावली में कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनमें व्यंग्य की बहार देखने को मिल जाती है। ये प्रसंग हैं— परशुराम लक्ष्मण संवाद केवट प्रसंग रावण-मंदोदरी-वार्तालाप और शंकर-स्तुति प्रसंग। एक उदाहरण लंकाकाण्ड से प्रस्तुत है—

'कत बीस लोचन बिलोकिए कुमतु फल
ख्यात लंका लाई कपि राड की सी भापरी।"

मदान्री ने अपने पति रावण के प्रति सुन्दर व्यग्य किया है। उसका पति बीस नेत्रों वाला है फिर भी अनिष्ट की आशंका से भयभीत नहीं हो रहा है। जिसके दो नेत्र होते हैं वह भी अपना भला बुरा देख लेता है परन्तु रावण बीस नेत्रों वाले होकर भी यह नहीं देखता कि हनुमान ने लंका को राड की भापरी समझ कर के ही तो जला दिया था। जो विधवा और अनाथा है उस पर चाहे कोई भी अपना बल प्रयोग कर सकता है उसे उजाड सकता है परन्तु हे नाथ! आप तो स्वर्ण नगरी लंका के स्वामी थे, फिर भी ऐसा हो गया, यही देखने और समझने की बात है।

शंकर बाबा जब सभी को स्वर्ग भेजने लगे तो ब्रह्मा जी सब के लिए स्वर्ग में स्थान बनाते-बनाते तंग आ गये और गिरिजा से कहने लगे कि अपने पति को समझा क्यों नहीं देती कि वे ऐसा न करें। इसी पर व्यग्य देखिए—

नाक सवाँरत आयो हौं नाकहि नाहिं पिनाकिहि नेकु निहारो
ब्रह्मा कहैं गिरिजा सिखवो पति रावरो दानि है बावरो भोरो"

जो दानि भोला भाला है, मस्तमौला और बावला है उसको चिंता ही किस बात की। वह तो हर किसी संतुष्ट करेगा जो भी उसके पास भिक्षा माँगने के लिए आएगा। इसी कारण ब्रह्मा जी ने शिव की अतिशय दानशीलता पर करारा व्यग्य किया है और पार्वती से पति को समझाने के लिए प्रार्थना की है।

लक्ष्मण का व्यग्य परशुराम प्रसंग में प्रख्यात ही है। लक्ष्मण जैसा चंचल, उद्धत और उत्तर प्रत्युत्तर निपुण कभी भी चुप नहीं बैठ सकता। इसी कारण तो उनका व्यग्य तीखा और कटु है। वे कहते हैं—

सजस तिहारो भरो भुवननि भृगुनाथ
प्रकट प्रताप आपु कहो सो सब सही
टूटयो सो न जुरगो सरासन महेस जू को
रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही

धनुष तो टूट चुका और वह जुड भी नहीं सकता फिर हे परशुराम! आपका उस धनुष के साथ नाता भी क्या है जो इतना आगबबूला हुए जा रहे हो। किसी की अपनी व्यक्तिगत वस्तु टूट जाय तो उसे क्रोध करना उचित है, परन्तु जब आपकी वस्तु टूटी नहीं है तो फिर क्यों ताव दिखाते हो और मान न मान मैं तेरा मेहमान की बात उपस्थित करते हो। निश्चित ही लक्ष्मण का यह व्यग्य परशुराम को निरुत्तर देने के लिए पर्याप्त है।

उपालंभ

उलाहना को उपालंभ कहते हैं। उलाहना उस समय दिया जाता है जब बार बार विनय करने पर भी कोई पसीजता नहीं है और निष्ठुरता करता ही चला जाता है। सूर की गोपियों ने कृष्ण व कुब्जा के प्रति अनेक उपालंभ दिये हैं और बहाने

ढूँढ़ाढूँढ़ कर दिए हैं। तुलसी ने भी अपने उपास्य के प्रति अनेक प्रकार से उलाहने दिए हैं और अपने ससार-सतरण के विषय में तरह-तरह से उपास्य को अपने उद्धार के लिए सजग किया है। 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड में उलाहना से युक्त कई पदों की रचना कवि ने की है।

आपने निवाजे की प कीज लाज, महाराज
मेरी ओर हेरि क न बठिए रिसाइ क
पालि के कृपाल ! व्यालवाल को न मारिए
औ काटिए न नाथ ! बिषहू को रुखु लाई क।'

इन उदाहरणों से कवि की उपालम्भ प्रवृत्ति के दर्शन भली भाँति हो जाते हैं, जिसके द्वारा उसने हृदय की पुकार को उपास्य के पास पहुँचाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

संस्कृत छायानुवाद

अन्त में संस्कृत छाया का भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि कई छन्दों पर संस्कृत श्लोकों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'हनुमन्नाटक' के निम्न श्लोक के भाव को तुलसी ने ज्यों का त्यों उस पद में उतार कर रख दिया है, जिसको 'कवितावली' में शिष्ट हास्य का सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है। श्लोक है—

पन्कमल रजोभिमुक्त पाषाण देहा
मलमत पदहल्या गौतमा धर्मपत्नीम्
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्त ।

छन्द है— बिंध के बासी उदासी तपोव्रत धारी महाबिनु नारि दुखारे
गौतमतीय तरी तुलसी सो कथा सुनिभे मुनिबृन्द सुखारे
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि काननु को पगु धारे।

हनुमन्नाटक' के ही एक अन्य मार्मिक श्लोक का अनुवाद और भी देखिए—

'सद्य पुरी परिसरेपु शिरीष मृद्वी
गत्वा जवात् त्रिचतुराणि पदानि सीता
गन्तव्यमस्ति कियदित्य सकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुण कृतवती प्रथमावतारम्।

तुलसी का पद है— पुर त निकसी रघुबीरबधू धरि धीरदए मग म डग द्वै
झलकी भरि भालकनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक पणकुटि करिहौ कित ह्वै
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारुचली जलच्वै।

भाषा के काव्य में संस्कृत के प्रयोगों की क्या उपयोगिता है इस पर वह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है। एक उदाहरण यहाँ पर रखा जा रहा है जिससे पाठकों को यह बोध हो जायगा कि तुलसी ने सम्कृत प्रयोग की प्रचुरता कितनी दिखलाई है—

'नाना पुराण निगमागम सम्मत यद
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि
स्वांत सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानि बधन मतिमजुल मातनोति—(मानस)

कवितावली में तो शब्दों में केवल संस्कृत शब्द और क्रियाओं को ही देखा जा सकता है। सीयमान, मद्य, वरनि सन्सि पाहि आदि के उदाहरण इस प्रकार हैं—

वद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए
साधु सीयमान जानि रीति पाप पीन की। (i)
दास तुलसी समय वदति मयनदिनी
मद मति कत ! सुनु मत म्हाको।' (ii)
'जनक सदसि जेत भले भले भूमिपाल
किये बलहीन बलु आपनो बढ़ायो है। (iii)
'पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत
राम हू की बिगरी तुम्ही सुधार लई है। (iv)

तदभव शब्द

तद्भव शब्दों का व्यवहार कवितावली में बहुत हुआ है परन्तु स्मरण रखने योग्य यह बात है कि वे तुलसी द्वारा गढ़े या बनाये नहीं गये हैं। वे तो उस समय प्रचलित थे और प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं की गलियों से गुजर कर आये थे। जनता में उनका प्रचलन बहुत था और वे जनसाधारण के कण्ठहार बन चुके थे या यों कहिए कि वे भाषा की धारा में मिलकर अन्य शब्दों के साथ बहुत चल जा रहे थे। उदाहरण के लिए- भुअन (भुवन) मीचु (मृत्यु) लाह लाभ या लाभ), बाह (बाध) चगु (चञ्चु) सफरी (सफरी) मइल (मल), सायर (सागर) पमउ (प्रस्वन) परिगा (प्रतीति) उराउ उछाह या (उत्साह), कराह (कगार) केवट (केवत) मवनि (मद नम्य), लोयन (लोचन) नाह (नाथ) जुआ (द्यूत) बन बयन (वचन) मयन (मन्न) भवनि (भावण्य) उजारो (उजाला) बूढ़ (वद्ध) महन (मथन) पत्यय (प्रत्ययत) पज (प्रतिष्ठा) पगार (प्राकार चहार दीवारी) काठे (उपकंठ पास) प्रत छ (प्रयत्न) गप्पर (गपर), गग्ग (सड़ग) विपगा (विपच्छ) आदि शब्द देखे जा सकते हैं। कवितावली से उदाहरण स्वरूप नीचे इन शब्दों के कुछ प्रयोगों को दिखाया जाता है—

माना प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो। —(१)
बलो महि मेरु उच्छलत सायर सकल —(२)
'बारिज्ञ भुअन निहारि नर नारि सब —( )
राय मारव सगनु सरनि मनमोही बात —(४)

ते प्रभु या सरित तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े —(५)
पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे
केवट की जाति कछू बेद न पढ़ाइहौं —(६)

'कवितावली' में कवि ने प्राकृत और अपभ्रंश की उस प्रवृत्ति को भी ग्रहण किया है जिसमें शब्दों को द्वित्व वर्णों से युक्त प्रयुक्त किया जाता है। द्वित्व-वर्णों के प्रयोग से कवि एक प्रकार की परुषता भी व्यक्त करना चाहता है, क्योंकि जहाँ-जहाँ ओजपूर्ण और दर्पपूर्ण स्थल 'कवितावली' में हैं वहाँ वहाँ कवि ने उन्मुक्त होकर ऐसे शब्दों का व्यवहार किया है और वह वहाँ पर सफल भी हुआ है। द्वित्व-वर्णों के आ जाने से वातावरण में भी एक प्रकार की भीषणता का समावेश हो जाता है और कवि जिस प्रकार का वातावरण उपस्थित करना चाहता है वह वातावरण भी स्वाभाविक रूप से उपस्थित हो जाता है। 'कवितावली' के लंकाकाण्ड में युद्ध के अधिकांश वर्णनों में कवि का यही उद्देश्य दिखलाई पड़ता है।

संयुक्त वर्णों के प्रयोग में भी कवि का यही उद्देश्य दिखलाई पड़ता है, जो द्वित्व वर्णों के प्रयोग में हमने स्पष्ट किया है। 'कवितावली' में संयुक्ताक्षर वाले उदाहरण इसी सत्य को प्रकट करते हैं—

डगत महि मेरु उच्छलत सायर सकल
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।

देशज शब्द

तत्सम और तद्भव शब्दों के उपरान्त अब देशज शब्दों की ओर आते हैं। 'कवितावली' में कवि ने कई देशज शब्दों का व्यवहार किया है। जैसे टाट मूँड मोट, बिसूरना खोरी पेट अबढर झोपड़ी भारि आदि। उदाहरणों के द्वारा इन शब्दों को नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

'ख्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाग की टाटिन्ह के परदा हैं।'—(१)
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी। —(२)
भोरानाथ जोगी सब औढर ढरत हैं। —(३)
'भेंट पितरन को न मूड़हू में बार है —(४)
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहालु को ? —(६)

विदेशी शब्द

विदेशी शब्दों से अभिप्राय उन अरबी और फारसी के शब्दों से है जो कि तुलसी के युग में प्रचलित थे और जिनका प्रयोग भी कवि के द्वारा अपने ग्रंथों में बहुतायत से किया गया है। 'कवितावली' में अनेक शब्द इन दोनों भाषाओं के आये हैं जिनको यहाँ पर दिखलाया जाता है। डा० राजपति दीक्षित ने अपनी पुस्तक 'तुलसीदास और उनका युग' में तुलसी की कृतियों में आये अरबी फारसी के शब्दों की विस्तृत सूची दी है। अरबी शब्दों को दिया जाता है जो 'कवितावली' में आये हैं।

साहिब गरीब, जमान, जहाज, लायक, खवर, सही, फौज हाल, बाजे बाजे, असबाब, पाइमाल, फहम, रहम, हलक, सबील गुलाम काहली, खास, जवाब विमव, हराम, जाहिर डामरि दगाई खलल, वाग, मसीन, हवूब, हलाकी, कमाई, खसम, अक्स, कमम, गरज। कुछ के उदाहरण इस प्रकार हैं—

साहेबु कहा जहान जानकीसु सो सुजान—(१)
'बाजे बाजे वीर बाहु धुनत समाज के।'—(२)
सबु असबाबु डाढो मैं न काढ्यो तें काढो
जिय की परी समार सहन भडार को।'—(३)

फारसी शब्द

कागद, अदेमा करतूति सब निसाना बाजार बक्सीस, लगाम सिरताज, सहनाई, पाच रुख, कमान, दरबार मजूरी तरकस खुआरु बाज गुमान बेचारा हवाल, कगूटह गरदा बाजीगर बराबरी, किरिच दुनी परत तहस-नहस करजो सुमार, दिल सरपतु मालूम पील दादि परवाह जजीर, खजाना दाम, कद सरकस, जा लहा, सरनाम माह खूब चलाकी सहर जहर हुसियार, तकिया चैन निहाल, सहम, निसानी सरम, ख्याल, गरम सालिम दगाबाज आदि फारसी के शब्द हैं जिनमें से कुछ के उदाहरण 'कवितावली' से लिए जाते हैं—

'तहसनहस किया साहसी समीर कें।' —(१)
आयो सोई काम प करेजो कसकतु हैं। —(२)
ईस बक्सीस जनि खीस करु ईस ! सुनु। —(३)
बान कमान निषग कम सिर सोहैं जटा मुनि वेषु किया है।—(४)

कुछ अरबी फारसी के शब्दों के साथ तुलसी ने बहुत ही स्वतंत्रता से काम लिया है। उनको अपनी भाषा का समझ कर उनके विविध रूप बनाये हैं और व्याकरण के अनुसार उनको ढाल लिया है। उन्होंने अरबी फारसी के व्याकरणों की नितान्त उपेक्षा कर के ऐसे रूप गढे हैं जिनका यह पता ही नहीं चलता कि वे अन्य भाषाओं के शब्द हैं। एक शब्द है 'गरीब' जिसमें कवि ने हिंदी व्याकरण के अनुसार भाववाचक सज्ञा बनाने वाले 'ता' को जोड दिया है और 'गरीबता' शब्द बना लिया है—

रावरी पिनाक म सरीकता कहा रही।

इसी प्रकार का एक अन्य शब्द है गम जिसका अर्थ होता है दुख। इसको हिन्दी का बनाने के लिए कवि ने हिन्दी का ही प्रत्यय जोडा है तथा छमिहै और नमिहै की तुक मिलाने के लिए गमिहैं रूप बना लिया है—

खल अनम्र हैं तुम्हैं सज्जन न गमिहैं।'

एक शब्द है साज' जिसको कवि ने साज कुमाज, साजे साजी गुमान साजू आदि अनेक रूपों में व्यवहृत किया है इनके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ऊपर की पक्तियों में कुछ रूप तो आ ही गये हैं।

निवाज शब्द की भी यही दशा है। नवाजे निवाजी निवाजा

भी कम आश्चर्य नहीं, क्योंकि उसका प्राण ही उसमें निवास किया गया है। चौपाया कहते हैं पशु को और चुआ कहते हैं गिरने का—

"चार चुआ नहूँ ओर चन जपर्ं झपर्ट सो तमीचर तौरी।

एक अन्य उदाहरण देकर इसे समाप्त किया जाता है जिसमें वच्चा को वचा के रूप में परिवर्तित कर लिया गया है केवल तुक मिलान के लिए—

न टर पशु म हू तें गन भी ना मना महि सग गिरवि रचा
तुलसी सब मूर सराहत हैं, जग में बलसालि है वानि बचा।

लोकोक्तियाँ और वाग्धाराएँ

कवितावली में लोकोक्तियों (कहावतों) और वाग्धाराओं (मुहावरों) के रूप में भाषागत सौन्दर्य सर्वत्र बिखरा पड़ा है। भाषा की आभा इनके प्रयोग से द्विगुणित हो गई है। वास्तव में इनके द्वारा कुछ विशेष वाणियों की अभिव्यक्ति मिलती है जो इतनी अनुभवपूर्ण और भावपूर्ण होती हैं कि अनुभवी लोगों के जीवन की पैठ सहज ही परिलक्षित हो जाती है। उत्तरकाण्ड में कवि ने लोकोक्तियों का जो कोष भर दिया है उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि कवि ने बहुत से पदों की रचना ही इनके प्रयोग के लिए समवत की है। यहाँ इनका दिग्दर्शन करना ही अभीष्ट होगा।

(१) कौसिक की चलिए पर, तोषि तन वारिए री
राय दसरत्थ की बलया लीज आलिरी।

(२) कहा कान करना (कहना मान लेना)
राजु काज अराज न जान्यो कह्यो तिय कोजेहि कान कियो है।

(३) हाथ लगाना व गाल बजाना
तुलसी कहत एक नीकें हाथ लाए कवि
अजहूँ न छाडै वालु गाल को बजावनो।

दोष-दर्शन

ईश्वर की सृष्टि में कोई भी पूर्ण नहीं है। कहीं न कहीं अपूर्णता सब में रहती जाती है और जो स्वयं को परिपूर्ण कहता है यह दम्भ करता है, दुस्साहस करता है। काव्य भी मनुष्य की कृति है और उस अपूर्ण मनुष्य की कृति है जिसको विधाता ने परिपूर्ण उत्पन्न ही नहीं किया। अतः उसमें दोष का आ जाना स्वाभाविक ही है। कवि यद्यपि साधारण जनों से भिन्न होता है पर यह भी दोषों का शिकार बन ही जाता है। निर्दोषता काम्य तो है परन्तु अनिवार्य नहीं यह सिद्धान्त सदैव हम स्मरण रखना चाहिए।

दोष—(काव्य दोष)—क्या होता है? इस पर काव्यशास्त्रियों ने विचार किया है। अग्निपुराणकार ने कहा है कि काव्यास्वाद में उद्वेग को पैदा करने वाला ही दोष होता है—"उद्वेगजनको दोषः। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का कहना है कि रस का अपकर्ष करने वाला दोष होता है—'दोषास्तस्यापकर्षकाः। काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य ने भी ऐसी ही बात कही है। उनका कहना था कि मुख्य अर्थ में क्षति होना ही दोष है— मुख्यार्थहतिर्दोषो। वामनाचार्य ने बहुत सुन्दर और सीधी सी परिभाषा दी है कि गुण का विपरीत दोष होना है— गुणविपर्ययात्मानो दोषाः।

दोषों के प्रकारों का उल्लेख करते हुए साहित्यदर्पणकार ने कहा है कि दोष पाँच प्रकार के होते हैं—

ते पुनः पंचधा मताः
पदे तदंशे वाक्यर्थे सम्भवन्ति रसेऽपि यत्।

दोष पद में, पदांश में, वाक्य में, अर्थ में तथा रस में हुआ करते हैं। पंडित रामदहिन मिश्र ने अपने 'काव्यदर्पण' में पद, पदांश और वाक्य वाले दोषों को शब्द दोषों के अन्तर्गत मान लिया है। इस प्रकार वे दोषों के तीन भेद—शब्द दोष, अर्थदोष और रसदोष—मानते हैं। चौथा भेद उन्होंने अलग से वर्णन दोष का भी माना है। शब्द दोष नामक भेद के अन्तर्गत उन्होंने ३२ दोष गिनाये हैं, अर्थदोष के अन्तर्गत १७ दोष बतलाये हैं, रस दोष के अन्तर्गत १० दोष दिये हैं और वर्णन दोष के अन्तर्गत ५ दोष कहे हैं। सब मिलाकर ६४ दोषों का वर्णन उन्होंने किया है। किसी किसी ने ३३ शब्द दोष, २७ अर्थ दोष और १० रस—दोष गिनाकर ७० दोषों का वर्णन भी किया है और वर्णन दोष वाला भेद भी नहीं माना है।

शब्द दोष

तुलसी की कवितावली में भी दोष स्पष्ट हैं जो तीनों ही प्रकार के हैं। अधिकतर दोष बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में दिखलाई देते हैं। पहले शब्द दोषों

को लिया जाता है । इन दोषों में एक 'पूनपदत्व दोष है जो कि उचित शब्दों के अभाव में दृष्टि गोचर होता है । अयोध्याकाण्ड में कई स्थानो पर यह दोष आया है जैसे वन गमन के प्रसग में यह पंक्ति—

'कीर के कागर ज्यों नप चीर
विभूपन उप्पम अगनि पाइ ।

यहाँ कवि अभिलषित अर्थ की प्रतीति कराने में असमर्थ है, क्योंकि उसने इसे 'त्याग, शब्द के साथ बिना ही लिख दिया गया है । तोता पुराने पखों को छोडकर जो शोभा पाता है वही राम ने राजसी चीर का त्याग कर पाई यह ठीक अर्थ है। "त्याग' शब्द के बिना यहा अर्थ लगाना असम्भव हो जाता है । लगता है कि इसी कारण स्वय कवि ने अगले पद में 'तजि शब्द का लाकर ठीक अर्थ बिठाया है—

'कागर कीर ज्यो भूपन चीर, सरीरु लस्यो तजि नीर ज्यो काई ।'

एक और उदाहरण देखिए जिसमें भी कवि पूर्ण शब्द रखने में असमर्थ हुआ है—

वाम विधि भरो सुखु सिरिस सुमन सम
ताको छल छुरी कोह कुलिस ल टेइ है ।'

कवि यहा पर अनुप्रास और रूपक में इतना भटक गया है कि उस शब्दों की कोई चिंता ही नही रही है । टेई शब्द पनाने के लिए धार तेज करने के लिए तो आ गया है परन्तु छल छुरी के काय के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द का व्यवहार नही किया है । छुरी का काय है काटना जिसका यहा पर अभाव ही है ।

शब्द दोषों के अन्तगत क्रम दोष भी आता है । कवितावली में दो तीन स्थलो पर यह दोष भी पाया जाता है । एक स्थल है—

मत्त भट मुकुट दसकठ साहस-सइल
सृग विद्दरनि जनु वज्र टाकी
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठु
सेपु सकुचित सकित पिनाकी
चलत महि मेरु उच्छलत सायर सकल
विकल बिधि बधिर दिसि विदिसि झाँकी
रजनि चर घरनि घर गभ अभक स्रवत
सुनत हनुमान की हाक बाकी ।'

राक्षस स्त्रियो के गर्भपात वाली बात अन्य विस्मयकारी बातो की अपेक्षा कुछ कोमल है अत उसी का वणन पहले होना चाहिए था। उसके बाद बाकी सब का आना क्रम की दृष्टि से अच्छा रहता है । इसी के कारण क्रम दोष है। एक अन्य पद—

मारुत नदन मारुत को मन को
खगराज को बगु लजायो।

इसमे यदि पहले खगराज का फिर मारुत और बाद मे मन का आता तो दोष न आता, क्योकि उत्तरोत्तर वेग का क्रम बन जाता ।

अर्थ दोष

अब कुछ अर्थ दोषों की चर्चा की जाय। कहीं कहीं कवितावली में अर्थ बड़ी कठिनता से निकलता है। जब अर्थ को निकालने के लिए खींचा तानी करनी पड़ती है तो ऐसे दोष को क्ष्टार्थ प्रतीति दोष कहते हैं। एक उदाहरण है—

'तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै
मति भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न पवै।"

यहाँ पर 'दस चारि नौ तीन इकीस सबै' वाक्य का अर्थ बड़ी कठिनता से निकलता है और जो निकलता भी है वह भी सर्वसम्मत नहीं बन पाता। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में कुछ अर्थ दिया गया है, भगवानदीन जी की टीका में दिया कुछ अन्य ही अर्थ दिया गया है और गीताप्रेस गोरखपुर वाली टीका में दिया गया अर्थ भी भिन्न है। इसके अर्थ को निकालने के लिए चाहे कितनी माथापच्ची की जाय परन्तु अभिलषित अर्थ कवि के हृदय में क्या रहा होगा उसको ढूंढ निकालना कठिन ही है। *एक और उदाहरण—*

गावति गीत सब मिलि सुन्दरि वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं।

इसमें अन्वय ठीक न बनने के कारण अर्थ भी ठीक नहीं बैठता। एक तो 'जुवा' शब्द ही भ्रम उत्पन्न कर देता है। उसका अर्थ जुआ माना जाय या 'युवा' यही निश्चित नहीं हो पाता। दूसरे 'जुरि' और 'मिलि' एक ही अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्द भी कम भ्रामक नहीं है। पं० विश्वनाथ प्रसाद ने जुआ का अर्थ 'द्यूत क्रीडा' किया है और पंक्ति का क्रम इस प्रकार 'जुआ जुरि विप्र-वेद पढ़ाहीं' दिया है। अगर द्यूत क्रीडा वाला अर्थ माना जाय तो उसके लिए उपयुक्त शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। सुंदरियों का मिल कर गीत गाना और द्यूत क्रीडा करना यह वाक्य तभी ठीक बैठ सकता था जबकि 'कराना' शब्द भी पद में आता। किसी भी प्रकार से देखा जाय अर्थ को निकालने में क्लिष्टता सामने आती है क्योंकि गीताप्रेस वाली टीका में द्यूतक्रीडा वाला अर्थ दिया ही नहीं गया है। ऐसा भ्रम जब उत्पन्न हो जाय तो अन्तःकरण को ही प्रमाण मानना चाहिए और महाकवि कालिदास की इस अमर उक्ति को स्मरण रखना चाहिए "सन्देहपदेषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः।" इसी प्रकार की कुछ अन्य पंक्तियाँ भी देखने योग्य हैं—

"जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माँह
राजपूतु पाएहूँ न सुखु लहियतु है
देह सुधा गेह ताहि मृगहूँ मलीन कियो
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है।

यहाँ पर अर्थ की संगति नहीं बैठ पाती क्योंकि पहली दो पंक्तियों में व्यक्त भाव की पुष्टि अंतिम दो पंक्तियों में आने वाले भाव से नहीं होती। ऊपरी साम्य तो सही लगता है परन्तु भीतरी साम्य किसी प्रकार भी नहीं बैठता क्योंकि सुधाधर मृग और राहु की किस किस के साथ कैसे संगति बैठाई जाय। दुःख की आत्यंतिकता तो

ये पंक्तियाँ बड़ी सुन्दरता से बतला देती हैं परन्तु उपमान उपमेय स्पष्ट नहीं हो पाते। यही इनमें दोष है जो कि कवि के अलङ्कार वश होने में आया है।

अलंकार को ठीक बिठाने में कवि का ध्यान बहुत रहा है। ऊपर का उदाहरण दिया जा चुका है। इसी दोष से दूषित एक और उदाहरण देखिए—

'बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
जिन्हके गुमानु सदा सालिम संग्राम को
तहां दसरत्थ के समत्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायो चापु चन्द्रमा ललाम को।

'चन्द्रमा ललाम' अनुप्रास मिलाने के लिए ही कवि ने प्रयुक्त किया है नहीं तो उसका यहाँ पर कोई अर्थ नहीं है। शिव के लिए 'चन्द्रमा ललाट' शब्द आना चाहिए क्योंकि "जिस के ललाट पर चन्द्रमा है वही शिव हैं" इस प्रकार की ध्वनि निकलनी चाहिए। 'चन्द्रमा ललाम' का अर्थ ललाम (सुन्दर) चन्द्रमा होता है जो कि अनभिप्रेत है 'ट' के स्थान पर 'म' शब्द का व्यवहार करके कवि ने यह दोष उपस्थित कर दिया है।

रस दोष

रस दोष वहाँ पर माना जाता है जहाँ कवि रस विरोध उत्पन्न कर देता है। *शृंगार के साथ वीभत्स का मिश्रण जो हुआ है उसे देखिए—*

श्रोनित छींट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी
मानो मरक्कत सैल विसाल में फैलि चली वर बीर बहूटी।

यद्यपि यह मिश्रण ऐसा है कि बुरा नहीं लगता और शृंगार या सौन्दर्य की अनुभूति में किसी प्रकार का विरोध भी नहीं उत्पन्न करता परन्तु जो दोष है उसे तो अवश्य ही दोष कहा जायगा।

काल दोष को इस दोष के अंतर्गत ही माना गया है। इसका भी उदाहरण 'कवितावली' से प्रस्तुत किया जाता है—

'कौन की हाँक पर चौंक चंडीसु बिधि
चंड कर थकित फिरि तुरंग हाँके
कौन के तेज बलसीम भट भीम-से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके।

रामायण की रचना पहले हुई और महाभारत की बाद में परन्तु यहाँ पर दोनों को मिला दिया है इसी के कारण काल दोष है। *शिव और विधि के साथ भीम का भी* उल्लेख नहीं होना चाहिए। भीम महाभारत काल के हैं अतः उनको रामायण काल में नहीं लाना था, क्योंकि रामायण काल में भीम थे ही कहाँ। भीम को उत्तर काल से पहले के काल का बतलाकर कवि ने दोष उपस्थित कर दिया है।

कुछ अन्य दोषों का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है जिन में से एक पुनरावृत्ति का है। एक पद्य में दो बार शब्द का प्रयोग तुलसी ने किया है और दोनों बार वह शब्द एक ही अर्थ के लिए आया है—

'डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्ब समुद्र सर
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर।"
— — —
चौंके बिरंचि संकरसहित कोलु कमठु अहि कलमल्यौ
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि, जबहि राम सिव धनु दल्यौ।'

'ब्याल' और 'अहि' दो शब्दों का प्रयोग शेषनाग के लिए गया है जो कि दोष है क्योंकि पद या पंक्ति में एक ही शब्द को दुहराना काव्य दोष माना गया है।

लिंग का व्यतिक्रम करना भी दोष कहा गया है। नवीन छायावादी कवियों ने तो इस को अपना ही लिया है। कविवर पंत आदि में यह दोष बहुलता के साथ मिलता है। प्राचीन कवियों की कृतियों में भी यत्र तत्र अवश्य ही देखे जा सकते हैं। कवितावली में भी ये दोष आ ही गये हैं जैसे—

'कापि रघुनाथ जब बान तानी।

'तानी' के स्थान पर 'ताना' शब्द आना चाहिए, क्योंकि बाण पुल्लिंग है।

तुलसी-साहित्य मे कवितावली का स्थान

'कवितावली' का सर्वांग-समीक्षण कर लेने के उपरांत अंत में उसकी विशेषता और उसकी तुलसी साहित्य में उसकी महत्ता का प्रतिपादन करना असंगत और अनुचित न होगा। यह प्रतिपादन कोई भिन्न प्रकार का प्रतिपादन नहीं है अपितु अब तक किए गए विश्लेषण और विवेचन का निष्कर्ष ही है।

'कवितावली' प्रथम और सबसे प्रमुख विशेषता यही है कि इसमें कवि तुलसी के जीवन के विषय में ऐसे संबंध सूत्र विद्यमान हैं जिनकी सहायता लेकर उनके अप्रकाशित और तमसावृत्त जीवन सदन में प्रवेश किया जा सकता है तथा छिन भिन्न घटनाओं रूपी किरणों के आधार पर उसे प्रकाशित और आलोकित किया जा सकता है। समस्त तुलसी साहित्य में यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें कवि के अप्रत्तिपूर्ण और कटकाकीर्ण आद्य त जीवन की गुत्थी सुलझाई गई है। यद्यपि अन्य ग्रंथों में भी कवि ने अपने विषय में सामग्री दी है परन्तु वह उतनी पूर्ण और सटीक नहीं है जितनी कि 'कवितावली' में है। कवि ने जिस रूप में निश्छल आत्माभिव्यक्ति की है हृदय को दहलाने वाली अपनी दुःखानुभूति व्यक्त की है सांसारिक उपसर्गों की मार्मिक व्यथा उद्घाटित की है अपने भग्न हृदय की असीम अश्रु गाथा वर्णित की है और अनुनित कर धाम भगवान राम के प्रति जो विनीत भाव भरी भक्ति-याचना प्रेषित की है वह प्रत्येक सहृदय के हृदय को आन्दोलित करने के लिए अपर्याप्त नहीं है। किंचित मात्र भी गोपनीयता न होने के कारण उसमें जो प्रेषणीयता आ गई है वह तुलसी के कौशल की परिचायक है। जीवन के एक एक अंश तथा एक-एक पक्ष की जो विवृति है उससे तुलसी के हृदय जगत का समग्र चित्र उपस्थित हो जाता है और उसको प्रकट करने वाला स्वाभाविक मौलिक और नितांत आत्मिक अभिव्यंजना शैली इतनी सजीव बन पड़ी है कि लगता है कवि ने अपने अश्रुओं से ही उस को लिखा है, जो बरबस ही बरस पड़ी होगी। वेदनाओं की बस्ती जब हृदय में बस जाती है तब वह आंसुओं के रूप में ही प्रकट होती है और ऐसी बरसती है कि आसपास के वातावरण को भी गीला और आर्द्र कर देती है। कविवर जयशंकर प्रसाद ने ऐसी ही तो बात अपनी इन पंक्तियों में बतान की चेष्टा की है—

> बस गई एक बस्ती है स्मृतियों की इसी हृदय में
> नक्षत्र लोक फैला है जैसे इस नील निलय में
> जो घनीभूत पीडा थी मस्तक में स्मृति सी छाई
> दुर्दिन में आंसू बनकर जो आज बरसने आई।

'कवितावली' की दूसरी विशेषता है—रस-वर्णन की। कोई भी कवि किसी भी—

प्रम म रस की सरिता बहाए बिना नहीं रह सकता । तुलसी न अपने सभी काव्य ग्रथो म रस की धारा को बहाया है परन्तु 'कवितावली' म परुप रसो की जसी निर्यो जनता कवि न की है, वसी वह अपने अन्य ग्रथो म कर सकने म असहाय्य असमर्थ रहा है । मानस यद्यपि कवि का प्रबन्ध काव्य है और उसम सभी रसो की अभिव्यक्ति करने क लिए समुचित अवकाश भी रहता है परन्तु फिर भी वीर, भयानक तथा वीभत्स रसो का व्यापक चित्रण कवि न वहाँ पर नहीं किया है । 'कवितावली' क अन्तगत आये हुए वीर तथा भयानक रसो के चित्रण म तो कवि न कमाल कर दिखाया है । उनको पढ़कर यह विवश होकर मानना पड़ता है कि कवि मृदु रसो क चित्रण म जिस प्रकार सिद्धहस्त है उसी प्रकार परुष रसो की अवतारणा करन म भी उसकी सानी किसी स कम नहीं है । कवि जब इन रसो का वणन करन के लिए उद्यत होता है तो योद्धा या राजाओ क रूप म सामना होता है उत्प्रेक्षाओ उपमाओ की विशाल वाहिनिया तत्पर होकर युद्ध क्षेत्र म उतर पड़ती है, दोनी विरोधी शब्दो के रूप म पक्ष विपक्ष क सनिको का समर उत्साह उमड़ता दिखाई देता है और इस प्रकार एक ऐसा संग्राम होता है कि आगे उसी को निर्निमेष दर्शन क लिए लालायित हो उठती हैं । पद पद पर पदो का कवि निर्माण करता चला जाता है और परुष वातावरण की सष्टि करता चला जाता है पर कवि का कौशल यही है कि कहीं भी स्खलन नहीं दिखाई पड़ता और उत्तरोत्तर परुषता म तीव्रता बढ़ती चली जाती है ।

कवितावली की तीसरी विशेषता है—समन्वय की । तुलसीदास जी जो लोकनायक कहे जाते हैं, समन्वयवादी कहे जाते हैं वह इसीलिए कि उन्होंने विभिन्न दर्शनों धर्मों आचार विचारो शलियो भाषाओ का समन्वय अपने साहित्य म उपस्थित किया है । सिद्धान्ततः यदि देखा जाय तो 'रामचरितमानस' की भांति इसम समन्वय नहीं है फिर भी जो समन्वय इसम दिखलाने की चेष्टा कवि न की है वह सवथा स्तुत्य है । उत्तरकाड का शंकर-स्तवन इस बात का सूचक है कि कवि वष्णवो और शवो की भेद बुद्धि को मिटाकर उनम पारस्परिक सहयोग क बीज बोना चाहता है यद्यपि कवितावली की विषयवस्तु म इसके लिए कोई भी स्थान नहा था । केवल कटुता की समाप्ति के लिए ही कवि न ऐसा किया है । बालकाड के बाल वणन और उत्तरकाड क गोपी प्रम वणन उपस्थित करने म भी कवि का वही उद्दश्य जान पड़ता है । य दोनो ही चित्रण वात्सल्यावतार महाकवि सूरदास के प्रभाव स प्रभावित हैं फिर भी उनको स्थान देकर कवि समन्वय ही स्थापित करना चाहता है । इसी प्रकार ब्रजभाषा तथा अवधी भाषा का प्रयोग करके प्रयाग ही न करके अपितु अपना करके भी कवि ने समन्वय दिखलाया है । कवित्त शली के साथ छप्पयो म स्तोत्र शली का जो दर्शन कवि न कराया है वह भी समन्वय का ही प्रयास है । इस प्रकार के समन्वय कर क ही तुलसी आज लोकनायक क पद पर सुशोभित हैं । कवितावली की चौथी विशेषता है मर्यादित अलकार प्रदर्शन की ।

अलकार कविता कामिनी का शृगार है आभूषण है और जब मर्यादा म इस का प्रयोग होता है या इसे पहना जाता है तभी इसकी शोभा है तथा यह शोभा का

कलाभिव्यक्ति की दृष्टि से 'कवितावली' अपने आप म पूण है। इसम उनकी रसाभिव्यजन विलक्षण प्रभा का सम्मिश्रण रहा है, जो परिस्थितिजन्य है। अलकार विधान भावानुकूल यथोचित एव शोभावधक है जिससे अथ-वैचित्र्य मे चमत्कार उत्पन्न हो गया है। छद से पदो मे लालित्य तारतम्य, नियोजन दीप्ति और द्रुत व्यजन प्रधान कवित्त सवयो की उपस्थापना हुई है। उसमे भावक के मन को रमाने की अदभुत शक्ति है। मानव के सहज भावो और भक्ति-दशन के उन्नत विचारो की शक्तिमती भाषा म प्रभावशाली व्यजना की है। शली मे प्रवाहमयता है। अन्तत 'कवितावली' हिदी की श्रेष्ठ काव्य रचना है।